

Bull No. 5/07-08

184

2008-0644

तर्कसंग्रह: १ अन्तर्माह with the  
Commentaries - याचबोधिनी & गोवर्धन  
and पदकृत्य of चंद्रजसिंह - Edited  
with short notes on difficult portion  
by महादेव गंगाधर बोले  
अ/ए, निर्णय सागर उ/ए, Mumbai, 1911.

1200

6

209



श्रीः ।

श्रीमदन्नंभट्टविरचितः

तर्कसंग्रहः ।



न्यायबोधिनी—पदकृत्यव्याख्योपेतः

विषमस्थलटिप्पणीयुतश्च

बाक्रे इत्युपाह्वगङ्गाधरभट्टतनुजनुषा  
महादेवधर्मणा संस्कृतः

Indira Gandhi National  
Centre for the Arts

—>0<—  
(तृतीयं संस्करणम्)

स च

मुम्बय्याम्

तुकाराम जावजी

इत्येतैः स्वीये निर्णयसागराख्यमुद्रणयन्त्रालये

बालकृष्ण रामचंद्र घाणेकरद्वारा मुद्रयित्वा

प्रकाशितम् ।

शकाब्दाः १८३३, ख्रिस्ताब्दाः १९११.

~~मुम्बय्ये~~ ~~आमरावती~~ ।



DATA ENTERED

Date..08/07/08.....

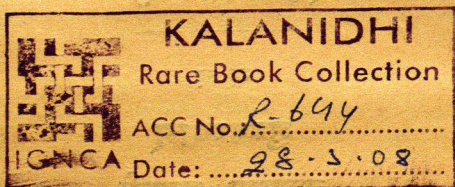
SANS

181.43

ANN

Published by Tukarm Javaji, Proprietor N. S. Press,  
23 Kolbhat Lane, Bombay.

Printed by B. R. Ghanekar at the "Nirnaya Sagar" Press,  
23 Kolbhat lane, Bombay.





श्रीः

## किञ्चित्प्रास्ताविकम् ।

### श्री ६ गुरुचरणारविन्दाभ्यां नमः ।

दुःखपङ्कनिमग्नमेतज्जगदुज्जिहीर्षुः परमकारुणिको भगवानक्षपादः कणादश्च क्रमेण पञ्चलक्षणीमान्वीक्षिकीं दशलक्षणीं च विरचयामासतुः । तत्राद्यां पञ्चलक्षणीमान्वीक्षिकीं न्यायशास्त्रपदेन व्यपदिशन्ति परार्थानुमानापरपर्यायस्य न्यायस्य सकल-विद्यानुग्राहकतया सर्वकर्मानुष्ठानसाधनतया प्रधानत्वात् । असाधारण्येन व्यपदेशा भवन्तीति न्यायात् । अपरां च दशलक्षणीं वैशेषिकतन्त्रपदेन । तत्र कण-भक्षकस्य वैशेषिकपदव्यपदेश्यत्वे हेतुं बोधयत्ययमाभाणकः—

द्वित्वे च पाकजोत्पत्तौ विभागे च विभागजे ।

यस्य न स्खलिता बुद्धिस्तं वै वैशेषिकं विदुः ॥ १ ॥ इति ।

तदेतच्छास्त्रद्वयमपि श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायादुत्तरविभक्तमभूत् । श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायैः तत्त्वचिन्तामणिर्नाम संनिवेशितोभयशास्त्ररहस्यः संदर्भः प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दखण्डैश्चतुर्धा प्रविभक्तो व्यरचि । ततः प्रसृति प्रकरणान्यपि तथाविधान्येवाऽभवन् । तेष्वयं तर्कसंग्रहोऽतिसंक्षेपेण शास्त्रद्वयस्यापि तत्त्वं स्पष्टं प्रतिपादयति । न्यायबोधिनीसंज्ञिकास्य टीकापि न्यायशास्त्रीयपारिभाषिकशब्दानां शीघ्रमनयासेन परिचायिका । एवं पदकृत्यमपि लक्षणगतशब्दानां प्रयोजनं प्रदर्शयति । तस्मादेतद्वीकाद्वयमपि प्राथमकलिपकानां बहूनां बहुतरमुपकारमातनोति । अत एतद्वीकाद्वयेन संयोज्यैष तर्कसंग्रहः सम्यक्परिशोध्य क्वचिद्विपणीपरिष्कृतोऽध्येतृणामुपकारक्षमो भूयादित्याशास्ते—

विदुषामनुचरः

बाक्रे इत्युपाह्वो महादेवशर्मा ।



## अनुक्रमणिका ।

| विषयः  | पृष्ठाङ्कः | विषयः  | पृष्ठाङ्कः |
|--|------------|--|------------|
| मङ्गलाचरणम् ... ..   | १          | दिक् ... ..  | ६          |
| बाललक्षणम् } ... ..  | १          | आत्मा ... ..   | ११         |
| उद्देशलक्षणम् } प० ... ..                                      | १          | मनः ... ..   | ११         |
| लक्षणलक्षणम् } ... ..  | १          | रूपम् ... ..   | ७          |
| परीक्षालक्षणम् } ... ..  | १          | रसः ... ..   | ८          |
| पदार्थोद्देशः ... ..   | १          | गन्धः ... ..   | ११         |
| शक्त्यादेरतिरिक्तत्व-<br>समर्थनं तन्निरसनं च } न्या० १-२       | १-२        | स्पर्शः ... ..   | ११         |
| द्रव्योद्देशः ... ..   | १          | रूपादिचतुष्टयस्य पाकजत्वादिभेदेनाधि-<br>करणविचारः ... .. | ९          |
| अन्धकारस्य दशमद्रव्य-<br>त्वशङ्का तन्निराकरणं च } न्या० १      | १          | पाकविचारः न्या० ... ..                                   | ११         |
| द्रव्यसामान्यलक्षणम् ... ..                                    | १          | संख्या ... ..  | १०         |
| गुणोद्देशः ... ..  | १          | परिमाणम् ... ..  | ११         |
| कर्मविभागः ... ..  | १          | पृथक्त्वम् ... ..  | ११         |
| सामान्यविभागः ... ..   | १          | संयोगः ... ..  | ११         |
| विशेषकथनम् ... ..  | ३          | विभागः ... ..  | ११         |
| समवायकथनम् ... ..  | १          | परत्वापरत्वे ... ..                                      | ११         |
| अभावभेदाः ... ..   | १          | गुरुत्वम् ... ..   | ११         |
| पृथिवीनिरूपणम् ... ..  | १          | द्रवत्वम् ... ..   | ११         |
| अव्याप्तिलक्षणम् } ... ..                                      | १          | क्षेहः ... ..  | १२         |
| अतिव्याप्तिलक्षणम् } प० ... ..                                 | १          | शब्दः ... ..   | ११         |
| असंभवलक्षणम् } ... ..  | १          | बुद्धिः ... ..   | १३         |
| अपां निरूपणम् ... ..   | ४          | स्मृतिः ... ..   | ११         |
| तेजोनिरूपणम् ... ..  | १          | अनुभवः ... ..  | ११         |
| वायुनिरूपणम् ... ..  | १          | यथार्थानुभवः ... ..                                      | ११         |
| अव्याप्त्यतिव्याप्त्यसंभ-<br>वानां निष्कृष्टलक्षणानि } न्या० ५ | ५          | अयथार्थानुभवः ... ..                                     | १४         |
| आकाशनिरूपणम् ... ..  | १          | यथार्थानुभवविभागः ... ..                                 | १५         |
| विभुत्वलक्षणम् } ... ..  | ६          | तत्करणविभागः ... ..                                      | ११         |
| मूर्तत्वलक्षणम् } न्या० ... ..                                 | ६          | करणलक्षणम् ... ..  | ११         |
| भूतत्वलक्षणम् } ... ..   | ६          | असाधारणत्वम् } न्या० ... ..                              | ११         |
| कालः ... ..  | १          | साधारणत्वम् } ... ..                                     | ११         |
|  |            | व्यापारलक्षणम् प० ... ..                                 | ११         |
|  |            | कारणलक्षणम् ... ..                                       | ११         |



| विषयः                               | पृष्ठाङ्कः | विषयः                             | पृष्ठाङ्कः    |
|-------------------------------------|------------|-----------------------------------|---------------|
| अन्यथासिद्धिलक्षणम् प०...           | १६         | सपक्षः ... ..                     | ११            |
| कार्यलक्षणम् ... ..                 | १७         | विपक्षः ... ..                    | ३०            |
| कारणविभागः ... ..                   | १७         | हेत्वाभासविभागः ... ..            | ३१            |
| समवायिकारणम् ... ..                 | १७         | सव्यभिचारः ... ..                 | ११            |
| असमवायिकारणम् ... ..                | १७         | साधारणः ... ..                    | ११            |
| निमित्तकारणम् ... ..                | १८         | असाधारणः ... ..                   | ३२            |
| करणलक्षणोपसंहारः ... ..             | १७         | अनुपसंहारी ... ..                 | ११            |
| प्रत्यक्षप्रमाणलक्षणम् ... ..       | १९         | विरुद्धः ... ..                   | ११            |
| प्रत्यक्षप्रमालक्षणम् ... ..        | १९         | सत्प्रतिपक्षः ... ..              | ३३            |
| निर्विकल्पकम् ... ..                | २०         | असिद्धविभागः ... ..               | ११            |
| सविकल्पकम् ... ..                   | ११         | आश्रयासिद्धः ... ..               | ११            |
| संनिकर्षविभागः ... ..               | ११         | स्वरूपासिद्धः ... ..              | ११            |
| संयोगसंनिकर्षोदाहरणम् ... ..        | २२         | व्याप्यत्वासिद्धः—उपाधिश्च ... .. | ३४            |
| संयुक्तसमवायसंनिकर्षोदाहरणम् ... .. | ११         | त्रिविधोपाधिप्रदर्शनम्.प०...      | ३५            |
| संयुक्तसमवेतसमवायसंनिकर्षोदा०       | ११         | कथितः ... ..                      | ११            |
| समवायसंनिकर्षोदा० ... ..            | ११         | उपमानम्—उपमितिश्च ... ..          | ३६            |
| समवेतसमवायसंनिकर्षोदा०              | ११         | शब्दः ... ..                      | ११            |
| विशेषणविशेष्यभावसंनिकर्षोदा०        | ११         | आप्तः ... ..                      | ११            |
| प्रत्यक्षप्रमाणलक्षणोपसंहारः        | २३         | वाक्यम् ... ..                    | ११            |
| अनुमानलक्षणम् ... ..                | ११         | शक्तिः ... ..                     | ११            |
| अनुमितिलक्षणम् ... ..               | ११         | लक्षणा                            | } न्या ... ३७ |
| परामर्शः ... ..                     | ११         | गौणीलक्षणा                        |               |
| व्याप्तिः ... ..                    | ११         | शुद्धालक्षणा                      |               |
| पक्षधर्मता ... ..                   | २५         | जहल्लक्षणा                        |               |
| अनुमानविभागः ... ..                 | ११         | अजहल्लक्षणा                       |               |
| स्वार्थानुमानम् ... ..              | २६         | जहदजहल्लक्षणा                     | }             |
| परार्थानुमानम् ... ..               | ११         | वाक्यार्थज्ञानहेतवः ... ..        | ३८            |
| पञ्चावयवाः ... ..                   | २७         | आकाङ्क्षादीनां लक्षणादीनि...      | ११            |
| अनुमानलक्षणोपसंहारः ... ..          | ११         | वाक्यविभागः ... ..                | ३९            |
| लिङ्गविभागः ... ..                  | ११         | शब्दज्ञानम् ... ..                | ११            |
| अन्वयव्यतिरेकि ... ..               | ११         | अयथार्थानुभवविभागः ... ..         | ११            |
| केवलान्वयि ... ..                   | २८         | संशयः ... ..                      | ११            |
| केवलव्यतिरेकि ... ..                | २९         | विपर्ययः ... ..                   | ४०            |
| पक्षः ... ..                        | ३०         | तर्कः ... ..                      | ११            |



| विषयः                        | पृष्ठाङ्कः | विषयः                  | पृष्ठाङ्कः |
|------------------------------|------------|------------------------|------------|
| स्मृतिः ... ..               | ४०         | कर्मनिरूपणम् ... ..    | ४४         |
| सुखम् ... ..                 | ”          | सामान्यनिरूपणम् ... .. | ४४         |
| दुःखम् ... ..                | ”          | विशेषनिरूपणम् ... ..   | ”          |
| इच्छा—द्वेषः—प्रयत्नः ... .. | ४१         | समवायनिरूपणम् ... ..   | ”          |
| धर्मः—अधर्मः ... ..          | ”          | प्रागभावः ... ..       | ४५         |
| आत्मविशेषगुणाः ... ..        | ”          | प्रध्वंसाभावः ... ..   | ”          |
| संस्कारविभागः ... ..         | ”          | अत्यन्ताभावः ... ..    | ”          |
| वेगः ... ..                  | ”          | अन्योन्याभावः ... ..   | ”          |
| भावना ... ..                 | ”          | उपसंहारः ... ..        | ४६         |
| स्थितिस्थापकः ... ..         | ४२         |                        |            |





श्रीः  
तर्कसंग्रहः ।

न्यायबोधिनी—पदकृत्यव्याख्योपेतः ।

निधाय हृदि विश्वेशं विधाय गुरुवन्दनम् ।  
बालानां सुखबोधाय क्रियते तर्कसंग्रहः ॥ १ ॥

न्यायबोधिनी ।

अखिलागमसंचारि श्रीकृष्णाख्यं परं महः ।  
ध्यात्वा गोवर्धनसुधीस्तनुते न्यायबोधिनीम् ॥ १ ॥

चिकीर्षितस्य ग्रन्थस्य निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थमिष्टदेवतानमस्का-  
रात्मकं मङ्गलं शिष्यशिक्षार्थं ग्रन्थादौ निबध्नाति—निधा-  
येति ॥ १ ॥

पदकृत्यम् ।

श्रीगणेशं नमस्कृत्य पार्वतीशंकरं परम् ।  
मया चन्द्रजसिंहेन क्रियते पदकृत्यकम् ॥ १ ॥  
यस्मादिदमहं मन्ये बालानामुपकारकम् ।  
तस्माद्धितकरं वाक्यं वक्तव्यं विदुषा सदा ॥ २ ॥

विश्वेशं जगत्कर्तारं श्रीसाम्बमूर्तिं हृदि मनसि निधाय नितरां धारयित्वा गुरु-  
वन्दनं च विधाय कृत्वेत्यर्थः । बालेति । अत्राधीतव्याकरणकाव्यकोशानधीत-  
न्यायशास्त्रो बालः । व्यासादावतिव्याप्तिवारणायानधीतन्यायेति । स्तनंधयेऽतिप्रस-  
क्तिवारणायधीतव्याकरणेति । सुखेति । सुखेनानायासेन बोधाय पदार्थतत्त्व-  
ज्ञानायेत्यर्थः । तर्क्यन्ते प्रमितिविषयीक्रियन्ते इति तर्का द्रव्यादिपदार्थास्तेषां सं-  
ग्रहः संक्षेपेणोद्देशलक्षणपरीक्षा यस्मिन् स ग्रन्थः । नाममात्रेण वस्तुसंकीर्तनमुद्देशः ।  
यथा द्रव्यं गुणा इति । असाधारणधर्मो लक्षणम् । यथा गन्धवत्त्वं पृथिव्याः ।  
लक्षितस्य लक्षणं संभवति न वेति विचारः परीक्षा । अत्रोद्देशस्य पक्षज्ञानं फलं  
लक्षणस्येतरभेदज्ञानं परीक्षाया लक्षणे दोषपरिहार इति मन्तव्यम् ॥

द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावाः सप्त पदार्थाः ॥

(न्या०) अथ पदार्थान्विभजते—द्रव्येति । तत्र सप्तग्रहणं प-  
दार्थत्वं द्रव्यादिसप्तान्यतमत्वव्याप्यमिति व्याप्तिलाभाय । ननु श-  
क्तिपदार्थस्याष्टमस्य सत्त्वात्कथं सप्तैवेति । तथाहि—बहिसंयुक्ते-



न्धनादौ सत्यपि मणिसंयोगे दाहो न जायते । तच्छून्येन तु जायते । अतो मणिसमवधाने शक्तिर्नश्यति । मण्यभावदशायां दाहानुकूला शक्तिरुत्पद्यत इति कल्प्यते । तस्माच्छक्तिरतिरिक्तः पदार्थ इति चेत् । न । मणेः प्रतिबन्धकत्वेन मण्यभावस्य कारणत्वेनैवनिर्वाहे मणिसमवधानासमवधानाभ्यामनन्तशक्तितद्धंस-तत्प्रागभावकल्पनाया अन्याय्यत्वात् । तस्मात्सप्तैवेति सिद्धम् ॥

तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव ॥

(न्या०) द्रव्याणि विभजते—पृथिवीति ॥ नन्वन्धकारस्य दशमद्रव्यस्य सत्त्वात्कथं नवैवेति । तथाहि—नीलं तमश्चलतीति प्रतीतेर्नीलरूपाश्रयत्वेन क्रियाश्रयत्वेन च द्रव्यत्वं सिद्धम् । नच क्लृप्तद्रव्येष्वन्तर्भावात्कुतो दशमद्रव्यत्वमिति वाच्यम् । आकाशादिपञ्चकस्य वायोश्च नीरूपत्वान्न तेष्वन्तर्भावः । तमसो निर्गन्धत्वान्न पृथिव्यामन्तर्भावः । जलतेजसोः शीतोष्णस्पर्शवत्त्वान्न तयो-रन्तर्भावः । तस्मात्तमसो दशमद्रव्यत्वं सिद्धमिति चेत् । न । ते-जोभावेनैवोपपत्तावतिरिक्तकल्पनार्या मानाभावात् । नच विनि-गमनाविरहात्तेज एव तमोभावस्वरूपमस्त्विति वाच्यम् । तेज-सोऽभावस्वरूपत्वे सर्वानुभूतोष्णस्पर्शाश्रयद्रव्यान्तरकल्पने गौ-रवात् । तस्मादुष्णस्पर्शगुणाश्रयतया तेजसो द्रव्यत्वं सिद्धम् ॥ तमसि नीलत्वादिप्रतीतिस्तु भ्रान्तिरेव, दीपापसरणक्रियाया एव तत्र भानात् ॥

(प०) तत्रेति । तत्र सप्तपदार्थमध्ये इत्यर्थः । द्रव्याणि नवैवेत्यन्वयः । एवं तत्रेति पदं चतुर्विंशतिगुणा इत्यादिनाऽप्यन्वेति । द्रव्यत्वजातिमत्त्वं गुणवत्त्वं समवायिकारणत्वं वा द्रव्यसामान्यलक्षणम् ॥

रूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागप-  
रत्वापरत्वगुरुत्वद्रवत्वस्नेहशब्दबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्र-  
यत्नधर्माधर्मसंस्काराश्चतुर्विंशतिगुणाः ॥ उत्क्षेपणापक्षेप-  
णाकुञ्चनप्रसारणगमनानि पञ्च कर्माणि । परमपरं चेति  
द्विविधं सामान्यम् ॥

(प०) परमपरं चेति । परसामान्यमपरसामान्यमित्यर्थः । परत्वं चाधिक-  
देशवृत्तित्वम् । अपरत्वं न्यूनदेशवृत्तित्वम् ॥



नित्यद्रव्यवृत्तयो विशेषास्त्वनन्ता एव । समवायस्त्वेक  
एव । अभावश्चतुर्विधः । प्रागभावः प्रध्वंसाभावोऽत्य-  
न्ताभावोऽन्योन्याभावश्चेति ॥ इत्युद्देशग्रन्थः ॥ तत्र  
गन्धवती पृथिवी । सा द्विविधा । नित्याऽनित्या च ।  
नित्या परमाणुरूपा । अनित्या कार्यरूपा । पुन-  
स्त्रिविधा शरीरेन्द्रियविषयभेदात् । शरीरमसदादी-  
नाम् । इन्द्रियं गन्धग्राहकं घ्राणं नासाग्रवर्ति । वि-  
षयो मृत्पाषाणादिः ॥

(न्या०) गन्धवतीति । गन्धवत्त्वं पृथिव्या लक्षणम् । लक्ष्या  
पृथिवी । पृथिवीत्वं लक्ष्यतावच्छेदकम् । यद्धर्मावच्छिन्नं लक्ष्यं  
स धर्मो लक्ष्यतावच्छेदकः । यो धर्मो यस्यावच्छेदकः स तद्धर्मा-  
वच्छिन्नः । तथाच लक्ष्यतावच्छेदकं पृथिवीत्वं चेत्लक्ष्यता पृथि-  
वीत्वावच्छिन्ना । गन्धसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वं  
पृथिव्या लक्षणम् ॥ एवं शीतस्पर्शवत्त्वादिलक्षणेभ्यु जलत्वादीनां  
लक्ष्यतावच्छेदकत्वं बोध्यम् ॥

(प०) तदेव हि लक्षणं यदव्याप्त्यतिव्याप्त्यसंभवरूपदोषत्रयशून्यम् । यथा  
गोः साल्लादिमत्त्वम् । अव्याप्तिश्च लक्ष्यैकदेशवृत्तित्वम् । अतएव गोर्न कपिलत्वं  
लक्षणं तस्याव्याप्तिग्रस्तत्वात् । अतिव्याप्तिश्च लक्ष्यवृत्तित्वे सत्यलक्ष्यवृत्तित्वम् ।  
अत एव गोर्न शृङ्गित्वं लक्षणं तस्यातिव्याप्तिग्रस्तत्वात् । असंभवश्च लक्ष्यमात्रा-  
वृत्तित्वम् । यथा गोरेकशफवत्त्वं न लक्षणं तस्यासंभवग्रस्तत्वात् । नित्येति ।  
ध्वंसभिन्नत्वे सति ध्वंसाप्रतियोगित्वं नित्यत्वम् । ध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय ध्वंस-  
भिन्नेति विशेषणम् । घटादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलम् । ध्वंसप्रतियोगित्वं  
प्रागभावप्रतियोगित्वं वाऽनित्यत्वम् । यद्भोगायतनं तदेव शरीरं चेष्टाश्रयो वा ।  
इन्द्रियमिति । चक्षुरादावतिव्याप्तिवारणाय गन्धग्राहकमिति । कालादावति-  
प्रसक्तिवारणायेन्द्रियमिति । विषय इति । शरीरेन्द्रियभिन्नत्वे सत्युपभोगसाधनं  
विषयः । शरीरादावतिव्याप्तिनिरासाय सत्यन्तम् । परमाण्वादावतिव्याप्तिवारणाय  
विशेष्यदलम् । कालादिवारणाय जन्यत्वे सतीत्यपि बोध्यम् ॥

शीतस्पर्शवत्य आपः । ता द्विविधाः । नित्या अनि-  
त्याश्च । नित्याः परमाणुरूपाः । अनित्याः कार्यरूपाः ।

१ अत्राधिकरणार्थकमतुबन्ताच्चप्रत्ययविधानाद्गन्धवत्त्वमित्यस्य गन्धाधिकरणत्वमर्थः ।  
तच्च समवायेन बोध्यम् । समवायसंबन्धावच्छिन्नगन्धत्वावच्छिन्नाधेयतानिरूपिताधिक-  
रणतावत्त्वमिति निष्कर्षः ।



पुनस्त्रिविधाः शरीरेन्द्रियविषयभेदात् । शरीरं वरुण-  
लोके । इन्द्रियं रसग्राहकं रसनं जिह्वाग्रवर्ति । विषयः  
सरित्समुद्रादिः ॥

(प०) शीतेति । तेजआदावतिव्याप्तिवारणाय शीतेति । आकाङ्क्षावारणाय स-  
ंति । कालादावतिप्रसक्तिवारणाय समवायसंबन्धेनेति पदं देयम् । इन्द्रियमिति ।  
त्वगादावतिव्याप्तिवारणाय रसग्राहकमिति । रसनेन्द्रियरससंनिकर्षादावतिव्याप्ति-  
निरासायेन्द्रियमिति । सरिदिति । आदिना तडागहिमकरकादीनां संग्रहः ॥

उष्णस्पर्शवत्तेजः । तच्च द्विविधम् । नित्यमनित्यं च ।  
नित्यं परमाणुरूपम् । अनित्यं कार्यरूपम् । पुनस्त्रिविधं  
शरीरेन्द्रियविषयभेदात् । शरीरमादित्यलोके प्रसिद्धम् ।  
इन्द्रियं रूपग्राहकं चक्षुः कृष्णताराग्रवर्ति । विषय-  
श्चतुर्विधो भौमदिव्योदर्याकरजभेदात् । भौमं वह्न्या-  
दिकम् । अबिन्धनं दिव्यं विद्युदादि । भुक्तस्य परि-  
णामहेतुरुदर्यम् । आकरजं सुवर्णादि ॥

(प०) उष्णेति । जलादावतिव्याप्तिनिरासयोष्णेति । कालादावतिप्रसङ्गवार-  
णाय समवायसंबन्धेनेति पदं देयम् । इन्द्रियमिति । घ्राणादावतिव्याप्तिवार-  
णाय रूपग्राहकमिति । कालादावतिव्याप्तिनिरासनायेन्द्रियमिति । भेदादिति पदं  
प्रत्येकमभिसंबन्ध्यते । भौममिति । आर्दिपदेन खद्योतगततेजःप्रभृतेः परिग्रहः ।  
विद्युदादीति । आदिनार्कचन्द्रादीनां परिग्रहः । भुक्तेति । भुक्तस्यान्नादेः  
पीतस्य जलस्य परिणामो जीर्णता तस्य हेतुरुदर्यमित्यर्थः । सुवर्णेति । आदिना  
रजतादिपरिग्रहः ।

रूपरहितः स्पर्शवान्वायुः । स द्विविधः । नित्योऽनित्यश्च ।  
नित्यः परमाणुरूपः । अनित्यः कार्यरूपः । पुनस्त्रिविधः  
शरीरेन्द्रियविषयभेदात् । शरीरं वायुलोके । इन्द्रियं  
स्पर्शग्राहकं त्वक् सर्वशरीरवर्ति । विषयो वृक्षादिक-  
म्पनहेतुः । शरीरान्तःसंचारी वायुः प्राणः । स चैको-  
ऽप्युपाधिभेदात्प्राणापानादिसंज्ञां लभते ॥

(न्या०) एवं पृथिव्यादित्रिकं निरूप्य वायुं निरूपयति—रूप-  
रहित इति । रूपरहितत्वे सति स्पर्शवत्त्वं वायोर्लक्षणम् । सति-  
सप्तम्या विशिष्टार्थकतया रूपरहितत्वविशिष्टस्पर्शवत्त्वं वायोर्लक्ष-  
णम् । विशेषणांशानुपादाने स्पर्शवत्त्वमात्रस्य लक्षणत्वे पृथिव्या-

१ रसनेन्द्रियस्य रसेन साकं यः संनिकर्षः संयुक्तसमवायस्तद्धारणायेत्यर्थः ।



दित्रिकेऽतिव्याप्तिः । तद्वारणाय विशेषणोपादानम् । तावन्मात्रोपादाने आकाशादावतिव्याप्तिः । तद्वारणाय विशेष्योपादानम् । अतिव्याप्तिर्नाम अलक्ष्ये लक्षणसत्त्वम् । यथा गोः शृङ्गित्वं लक्षणं कृतं चेच्छ्रक्ष्यभूतगोभिन्नमहिष्यादावतिव्याप्तिस्तत्रापि शृङ्गित्वस्य विद्यमानत्वात् । अव्याप्तिर्नाम लक्ष्यैकदेशावृत्तित्वम् । लक्ष्यैकदेशे लक्ष्यतावच्छेदकाश्रयीभूतकचिल्लक्ष्ये लक्षणासत्त्वमव्याप्तिरित्यर्थः । यथा गोर्नीलरूपवत्त्वं लक्षणं कृतं चेच्छ्रक्ष्यतावच्छेदकाश्रयीभूतश्वेतगवि अव्याप्तिस्तत्र नीलरूपाभावात् । असंभवो नाम लक्ष्यमात्रे कुत्रापि लक्षणासत्त्वम् । यथा गोरेकशफवत्त्वम् । गोसामान्यस्य द्विशफवत्त्वेन एकशफवत्त्वस्य कुत्राप्यसत्त्वात् । अतिव्याप्त्यव्याप्त्यसंभवानां निष्कृष्टलक्षणानि—लक्ष्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदसामानाधिकरण्यमतिव्याप्तिः । अव्याप्तिस्तु लक्ष्यतावच्छेदकसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वम् । असंभवस्तु लक्ष्यतावच्छेदकव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वम् ॥

(प०) रूपेति । घटादिवारणाय विशेषणम् । आकाशादिवारणाय विशेष्यम् । इन्द्रियमिति । चक्षुरादिवारणाय स्पर्शग्राहकमिति । कालादावतिव्याप्तिवारणायेन्द्रियमिति । वृक्षेति । आदिपदेन जलादिपरिग्रहः । शरीरान्तरिति । महावाय्वादावतिव्याप्तिवारणाय विशेषणम् । मनआदिवारणाय विशेष्यम् । धनंजयवारणाय संचारीति । उपाधीति । मुखनासिकाभ्यां निर्गमनप्रवेशनात्प्राणः । जलादेरधोनयनादपानः । भुक्तपरिणामस्य जाठरानलस्य समुन्नयनात्समानः । अन्नादेरूर्ध्वनयनादुदानः । नाडीमुखेषु वितननाद्धान इति क्रियारूपोपाधिभेदात्तथा व्यवहियत इत्यर्थः ॥

शब्दगुणकमाकाशम् । तच्चैकं विभु नित्यं च ॥

(न्या०) आकाशं लक्षयति—शब्दगुणकमिति । गुणपदमाकाशे शब्द एव विशेषगुण इति द्योतनाय न त्वतिव्याप्तिवारणाय, समवायेन शब्दवत्त्वमात्रस्य सम्यक्त्वात् । तच्चैकमिति । अनेकत्वे मानाभावादिति भावः । विभ्विति । सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगित्वं विभुत्वम् । मूर्तत्वं च क्रियावत्त्वम् । पृथिव्यप्तेजोवायुमनांसि मूर्तानि । पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशेतिपञ्चकं भूतपदवाच्यम् । भूतत्वं नाम बहिरिन्द्रियग्राह्यविशेषगुणवत्त्वम् ॥

(प०) शब्देति । शब्दो गुणो यस्य तत्तथा । असंभववारणाय शब्दगुणोभयम् (?) । विभ्विति । सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगित्वम् ।



अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः । स चैको विभुर्नित्यश्च ॥

(न्या०) कालं लक्षयति—अतीतेति । व्यवहारहेतुत्वस्य लक्षणत्वे घट इति व्यवहारहेतुभूतघटादावतिव्याप्तिः । तद्वारणाय अतीतादीति विशेषणोपादानम् ॥

(प०) अतीतेति । अतीत इत्यादिर्यो व्यवहारोऽतीतो भविष्यन्वर्तमान इत्यात्मकस्तस्यासाधारणहेतुः काल इत्यर्थः । नन्विदं लक्षणमाकाशेऽतिव्याप्तं व्यवहारस्य शब्दात्मकत्वादिति चेत् । न । अत्र हेतुपदेन निमित्तहेतोर्विवक्षितत्वात् । न चैवं कण्ठतात्वाद्यभिघातेऽतिव्याप्तिरिति वाच्यं, विभुत्वस्यापि निवेशात् ।

प्राच्यादिव्यवहारहेतुर्दिक् । सा चैका नित्या विभ्वी च ॥

(न्या०) दिशो लक्षणमाह—प्राच्येति । उदयाचलसंनिहिता या दिक् सा प्राची । अस्ताचलसंनिहिता या दिक् सा प्रतीची । मेरोः संनिहिता या दिक् सोदीची । मेरोर्व्यवहिता या दिक् सावाची ॥

(प०) प्राचीति । इयं प्राचीयमवाचीयं प्रतीचीयमुदीचीत्यादिव्यवहारासाधारणं कारणं दिगित्यर्थः । हेतुर्दिगित्युच्यमाने परमाण्वादावतिव्याप्तिः स्यात्तद्वारणाय प्राच्यादिव्यवहारहेतुरिति । आकाशादिवारणायासाधारणेत्यपि बोध्यम् ॥

ज्ञानाधिकरणमात्मा । स द्विविधः । जीवात्मा परमात्मा चेति । तत्रेश्वरः सर्वज्ञः परमात्मा एक एव । जीवस्तु प्रतिशरीरं भिन्नो विभुर्नित्यश्च ॥

(न्या०) आत्मानं निरूपयति—ज्ञानाधिकरणमिति । अधिकरणपदं समवायेन ज्ञानाश्रयत्वलाभार्थम् ॥

(प०) ज्ञानाधिकरणेति । भूतलादिवारणाय ज्ञानेति । कालादिवारणाय समवायेनेत्यपि देयम् । ईश्वर इति । समवायसंबन्धेन नित्यज्ञानवानीश्वरः । जीव इति । सुखादिसमवायिकारणं जीव इत्यर्थः ॥

सुखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः । तच्च प्रत्यात्मनियतत्वादनन्तं परमाणुरूपं नित्यं च ॥

(न्या०) मनो निरूपयति—सुखादीति । उपलब्धिर्नाम साक्षात्कारः । तथाच सुखदुःखादिसाक्षात्कारकारणत्वे सति इन्द्रियत्वं मनसो लक्षणम् । इन्द्रियत्वमात्रोक्तौ चक्षुरादावतिव्याप्तिः । अतः सुखादिसाक्षात्कारकारणत्वविशेषणम् । विशेष्यानुपादाने आत्मन्यतिव्याप्तिः । आत्मनः सुखादिकं प्रति समवायिकारणत्वात् । अत इन्द्रियत्वरूपविशेष्योपादानम् ॥



(प०) सुखेति । आत्ममनःसंयोगादिवारणायैन्द्रियमिति । चक्षुरादिवारणाय सुखेति ॥

चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणो रूपम् । तच्च शुक्लनीलपीतरक्तह-  
रितकपिशचित्रभेदात्सप्तविधम् । पृथिवीजलतेजोवृत्तिः ।  
तत्र पृथिव्यां सप्तविधम् । अभास्वरशुक्लं जले । भा-  
स्वरशुक्लं तेजसि ॥

(न्या०) रूपं लक्षयति—चक्षुरिति । चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वविशि-  
ष्टगुणत्वं रूपस्य लक्षणम् । विशेष्यमात्रोपादाने रसादावतिव्याप्तिः ।  
अतश्चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वविशेषणम् । तावन्मात्रोपादाने रूपत्वेऽति-  
व्याप्तिः । यो गुणो यदिन्द्रियग्राह्यस्तन्निष्ठा जातिस्तदिन्द्रियग्रा-  
ह्येति नियमात्तद्वारणाय विशेष्योपादानम् । चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वं नाम  
चक्षुर्भिन्नेन्द्रियग्राह्यत्वे सति चक्षुर्ग्राह्यत्वम् । मात्रपदानुपादाने  
संख्यादिसामान्यगुणेऽतिव्याप्तिः, संख्यादावपि चक्षुर्ग्राह्यत्ववि-  
शिष्टगुणत्वस्य सत्त्वात् । अतस्तद्वारणाय मात्रपदम् । संख्यादेश्चक्षु-  
र्भिन्नत्वगिन्द्रियग्राह्यत्वाच्चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वं नास्ति । अतीन्द्रियगुरु-  
त्वादावतिव्याप्तिवारणाय चक्षुर्ग्राह्येति । अत्र लक्षणे ग्राह्यत्वं नाम  
प्रत्यक्षविषयत्वम् । अग्राह्यत्वं नाम तद्विषयत्वम् । तथाच चक्षु-  
र्भिन्नेन्द्रियजन्यप्रत्यक्षाविषयत्वे सति चक्षुर्जन्यप्रत्यक्षविषयत्व-  
मिति फलितोऽर्थः । ननु प्रभाघटसंयोगे रूपलक्षणस्यातिव्याप्ति-  
स्तस्य चक्षुर्मात्रग्राह्यगुणत्वादिति चेन्न । गुणपदस्य विशेषगुणप-  
रत्वात् । न चैवं विशेषगुणत्वघटितलक्षणे संख्यादावतिव्याप्त्य-  
भावान्मात्रपदवैयर्थ्यमिति वाच्यम् । जलमात्रवृत्तिसांसिद्धिकद्रव-  
त्वादावतिव्याप्तिवारणाय तदुपादानात् । अथवा चक्षुर्मात्रग्राह्यजा-  
तिमद्गुणत्वस्य लक्षणत्वान्न प्रभाघटसंयोगादावतिव्याप्तिः । संयो-  
गत्वजातेश्चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वाभावात् । घटपटसंयोगस्य त्वगिन्द्रिय-  
ग्राह्यत्वात्तद्गतजातेरपि त्वगिन्द्रियग्राह्यत्वात् । यो गुणो यदिन्द्रि-  
यग्राह्यस्तन्निष्ठजातेरपि तदिन्द्रियग्राह्यत्वात् । अत्र जातिघटितल-  
क्षणे गुणत्वानुपादाने चक्षुर्मात्रग्राह्यजातिमति सुवर्णादावतिव्या-  
प्तिरतस्तद्वारणाय तदुपादानम् । एवं रसादिलक्षणे विशेषणानु-  
पादाने लक्ष्यभिन्नगुणादावतिव्याप्तिः । विशेष्यानुपादाने लक्ष्य-  
मात्रवृत्तिरसत्वगन्धत्वादावतिव्याप्तिः । अतो विशेषणविशेष्ययो-  
रुपादानम् ॥

१ नचात्र 'गुणे शुक्लादयः पुंसि' इत्यनुशासनविरोधः शङ्क्यः । तस्य विशेष्यासमभि-  
व्याहारविषयकत्वादत्र च रूपमित्यस्यानुपज्ञात् । २ येनेन्द्रियेण या व्यक्तिर्गृह्यते तद्गता  
जातिस्तदभावश्च तेनैवेन्द्रियेण गृह्यत इति नियमस्य प्रकृतोपयोग्यंशमात्रोपादानमिदम् ॥



(प०) चक्षुरिति । रूपत्वादिवारणाय गुणपदम् । रसादिवारणाय चक्षुर्ग्राह्य इति । संख्यादिवारणाय मात्रपदम् । यद्यपि प्रभाभित्तिसंयोगवारणाय गुणपदेन विशेषगुणस्य विवक्षणीयतया तत एव संख्यादिवारणं संभवतीति मात्रपदं व्यर्थं तथापि सांसिद्धिकद्रवत्ववारणाय तदावश्यकम् । वस्तुतस्तु परमाणुरूपेऽव्याप्तिवारणाय चक्षुर्मात्रग्राह्यजातिमत्त्वस्य विवक्षणीयतया विशेषपदं न देयम् । त्र्यणुकादिवारणाय गुणपदं तु देयम् । सप्तेति । रूपमित्यनुषज्यते ॥

रसनग्राह्यो गुणो रसः । स च मधुराम्ललवणकटुक-  
षायतिक्तभेदात् षड्विधः । पृथिवीजलवृत्तिः । पृथिव्यां  
षड्विधः । जले मधुर एव ॥

(प०) रसनेति । रसत्वादिवारणाय गुण इति । रूपादावतिव्याप्तिवारणाय रस-  
नेति । तत्रेति । पृथिवीजलयोरित्यर्थः । षड्विध इति । अत्र रस इत्यनुवर्तते ॥

घ्राणग्राह्यो गुणो गन्धः । स द्विविधः । सुरभिरसुर-  
भिश्च । पृथिवीमात्रवृत्तिः ॥

(प०) घ्राणग्राह्य इति । गन्धत्वादावतिव्याप्तिवारणाय गुण इति । रूपादावति-  
व्याप्तिवारणाय घ्राणग्राह्य इति । पृथिवीति । पृथिवीसंबन्धसत्त्वे गन्धप्रतीतिसत्त्वं  
पृथिवीसंबन्धाभावे गन्धप्रतीत्यभाव इत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां पृथिवीगन्धस्यैव जले  
प्रतीतिर्बोद्ध्या । एवं वायावपि । ननु देशान्तरस्थकस्तूरीकुसुमसंबद्धपवनस्यैतद्देशे  
तत्संबन्धाभावाद्गन्धप्रतीत्यनुपपत्तिः । नूच वाय्वानीतत्र्यणुकादिसंबन्धोऽस्त्येवेति  
वाच्यं; कस्तूर्या न्यूनतापत्तेः, कुसुमस्य च सच्छिद्रत्वापत्तेरिति चेन्न । भोक्रदृष्टवि-  
शेषेण पूर्ववत्त्र्यणुकान्तराद्युत्पत्तेः । कर्पूरादौ तु तदभावान्न तथात्वमिति ॥

त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्यो गुणः स्पर्शः । स च त्रिविधः ।  
शीतोष्णानुष्णाशीतभेदात् । पृथिव्यप्तेजोवायुवृत्तिः ।  
तत्र शीतो जले । उष्णस्तेजसि । अनुष्णाशीतः पृथि-  
वीवाय्वोः ॥

(न्या०) स्पर्शं लक्षयति—त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्येति । अ-  
त्रापि मात्रपदं संख्यादिसामान्यगुणादावतिव्याप्तिवारणाय ।  
अन्यविशेषणकृत्यं पूर्ववद्बोध्यम् । ग्राह्यत्वपदार्थोऽपि पूर्ववदेव  
प्रत्यक्षविषयत्वरूप एव बोध्यः ॥

(प०) स्पर्शत्वादावतिव्याप्तिवारणाय गुण इति । रूपादावतिव्याप्तिवारणाय  
त्वगिन्द्रियेति । संख्यादिवारणाय मात्रपदम् । तत्रेति । पृथिव्यादिचतुष्टये । शीत  
इति शीतस्पर्शः । उष्ण इति उष्णस्पर्शः ॥

रूपादिचतुष्टयं पृथिव्यां पाकजमनित्यं च । अन्यत्रापा-



कजं नित्यमनित्यं च । नित्यगतं नित्यम् । अनित्य-  
गतमनित्यम् ॥

(न्या०) रूपादिचतुष्टयमिति । एतत्तत्त्वनिर्णयश्चेत्थम् ।

पाको नाम विजातीयतेजःसंयोगः । स च नानाजातीयरूपजनको  
विजातीयस्तेजःसंयोगः । तदपेक्षया रसजनको विजातीयः । एवं  
गन्धजनकोऽपि ततो विजातीय एव । एवं स्पर्शजनकोऽपि त-  
थैव । एवंप्रकारेण भिन्नभिन्नजातीयाः पाकाः कार्यवैलक्ष्येन क-  
ल्पनीयाः । यथा तृणपुञ्जनिक्षिप्त आम्रादौ ऊष्मलक्षणविजातीय-  
तेजःसंयोगात्पूर्वहरितरूपनाशेन रूपान्तरस्य पीतादेरुत्पत्तिर्न तु  
रसादेरुत्पत्तिः । पूर्वहरसस्याम्लस्यैवानुभवात् । क्वचित्पूर्वहरितरूप-  
सत्त्वेऽपि रसपरावृत्तिर्दृश्यते । विजातीयतेजःसंयोगरूपपाकवशा-  
त्पूर्वतनाम्लरसनाशेन मधुररसस्यानुभवात् । तस्माद्रूपजनकापे-  
क्षया रसजनको विलक्षण एवाङ्गीकार्यः । एवं गन्धजनको विलक्षण  
एव । रूपरसयोरपरावृत्तावपि पूर्वगन्धनाशेऽपि विजातीयपाक-  
वशात्सुरभिगन्धोपलब्धेः । एवं स्पर्शजनकोऽपि पाकवशात्कठि-  
नस्पर्शनाशेन मृदुस्पर्शानुभवात् । तस्माद्रूपादिजनका विजा-  
तीया एव पाकाः । अत एव पार्थिवपरमाणूनामेकजातीयत्वेऽपि  
पाकमहिम्ना विजातीयद्रव्यान्तरानुभवः । यथा गोभुक्ततृणादी-  
नामापरमाण्वन्तर्भङ्गे तृणारम्भकपरमाणुषु विजातीयतेजःसंयो-  
गात्पूर्वरूपादिचतुष्टयनाशे तदनन्तरं दुग्धे यादृशं रूपादिकं व-  
र्तते तादृशरूपरसगन्धस्पर्शजनकास्तेजःसंयोगा जायन्ते । तदुत्तरं  
तादृशरूपरसादय उत्पद्यन्ते । तादृशरूपरसादिविशिष्टपरमाणु-  
भिर्दुग्धद्वयणुकमारभ्यते । तत्तत्तृणकादिक्रमेण महादुग्धारम्भः ।  
एवं दुग्धारम्भकैः परमाणुभिरेव दध्यारभ्यते पाकमहिम्ना । एवं  
दुग्धारम्भकैरेव परमाणुभिर्नवनीतादिकमिति दिक् ॥

एकत्वादिव्यवहारहेतुः संख्या । सा नवद्रव्यवृत्तिः ।

एकत्वादिपरार्थपर्यन्ता । एकत्वं नित्यमनित्यं च । नि-  
त्यगतं नित्यम् । अनित्यगतमनित्यम् । द्वित्वादिकं तु  
सर्वत्रानित्यमेव ॥

प०) एकत्वादीति । एकत्वमित्यादिर्यो व्यवहारः एको द्वावित्याद्यात्मकस्तस्य  
हेतुः संख्या इत्यर्थः । घटादिवारणाय एकत्वादीति । कालादिवारणायसाधारणेत्यपि  
देयम् । ननु संख्याया अवधिरस्ति न वेत्यत आह-एकत्वादीति । तथाच 'एकं  
दश शतं चैव सहस्रमयुतं तथा । लक्षं च नियुतं चैव कोटिर्बुद्धमेव च ॥ वृन्दं खर्वो



निखर्वश्च शङ्खः पद्मश्च सागरः । अन्त्यं मध्यं परार्धं च दशवृद्ध्या यथाक्रमम् ॥  
इति महदुक्तेः परार्धपर्यन्तैव संख्या इति भावः ॥

**मानव्यवहारासाधारणं कारणं परिमाणम् । नवद्रव्य-  
वृत्तिः । तच्चतुर्विधम् । अणु महदीर्घं ह्रस्वं चेति ॥**

(प०) मानेति । मानं परिमितिस्तस्या यो व्यवहारः इदं महदिदमणु इत्याद्या-  
त्मकः तस्य कारणं परिमाणमित्यर्थः । दण्डादिवारणाय मानेति । कालादिवार-  
णायसाधारणेति । शब्दत्ववारणाय कारणमिति । नवद्रव्येति । चतुर्विधमपि  
परमध्यभेदेन द्विविधम् । तत्र परमाणुह्रस्वत्वे परमाणुमनसोः । मध्यमाणुह्रस्वत्वे  
द्व्यणुके । परममहत्त्वदीर्घत्वे गगनादौ । मध्यममहत्त्वदीर्घत्वे घटादौ । एतन्मौ-  
क्तिकादिदं मौक्तिकमण्विति व्यवहारस्यापकृष्टमहत्त्वाश्रयत्वादौणत्वं बोध्यम् ।  
एवमेव केतनाद्यजनं ह्रस्वमित्यत्रापि निकृष्टदीर्घत्वादौणत्वम् ॥

**पृथग्व्यवहारासाधारणकारणं पृथक्त्वम् । सर्वद्रव्यवृत्तिः ॥**

(प०) पृथगिति । अयमस्मात्पृथगिति यो व्यवहारस्तस्य कारणं पृथक्त्वमि-  
त्यर्थः । दण्डादिवारणाय पृथगित्यादि । कालादिवारणायसाधारणेति । पृथग्व्य-  
वहारत्ववारणाय कारणमिति ॥

**संयुक्तव्यवहारहेतुः संयोगः । सर्वद्रव्यवृत्तिः ॥**

(प०) संयुक्तेति । इमौ संयुक्ताविति यो व्यवहारस्तस्य हेतुः संयोग इ-  
त्यर्थः । दण्डादिवारणाय संयुक्तव्यवहारिति । कालादिवारणायसाधारणेत्यपि  
देयम् । संयुक्तव्यवहारत्वेऽतिप्रसक्तिवारणाय हेतुरिति । उपदर्शितलक्षणचतुष्ट-  
येऽसाधारणपदं देयम् । क्वचित्पुस्तके परिमाणपृथक्त्वलक्षणे ईश्वरेच्छादिवारणा-  
यासाधारणेति दृश्यते तत्त्वाधुनिकैर्न्यस्तमिति बोध्यम् ॥

**संयोगनाशको गुणो विभागः । सर्वद्रव्यवृत्तिः ॥**

(न्या०) विभागं लक्षयति—संयोगेति । संयोगनाशकत्व-  
विशिष्टगुणत्वं विभागस्य लक्षणम् । विशेषणमात्रोपादाने क्रि-  
याया अपि संयोगनाशकत्वात्तत्रातिव्याप्तिवारणाय गुणत्वमिति  
विशेष्योपादानम् ॥

(प०) संयोगेति । संयोगनाशजनक इत्यर्थः । कालेऽतिप्रसक्तिवारणाय गु-  
णपदम् । ईश्वरेच्छादिवारणायसाधारणेत्यपि बोध्यम् । ननु असाधारणपदो-  
पादाने गुणपदस्य वैयर्थ्यं स्यादिति चेत् । न । क्रियायामतिप्रसक्तिवारणाय  
तस्याप्यावश्यकत्वात् ॥

**परापरव्यवहारासाधारणकारणे परत्वापरत्वे । पृथि-  
व्यादिचतुष्टयमनोवृत्तिनी । ते च द्विविधे । दिकृते का-**



लकृते चेति । दूरस्थे दिक्कृतं परत्वम् । समीपस्थे दि-  
कृतमपरत्वम् । ज्येष्ठे कालकृतं परत्वं कनिष्ठे काल-  
कृतमपरत्वम् ॥

(प०) परेति । परव्यवहारासाधारणं कारणं परत्वम् । अपरव्यवहारासाधारणं  
कारणमपरत्वमित्यर्थः । दण्डादिवारणाय परव्यवहारेति । कालादिवारणायासा-  
धारणेति । परव्यवहारत्ववाणाय कारणेति । एवमेव द्वितीयेऽपि बोध्यम् ॥

आद्यपतनासमवायिकारणं गुरुत्वम् । पृथिवीजलवृत्ति ॥

(न्या०) गुरुत्वं लक्षयति—आद्येति । द्वितीयपतनक्रियायां  
वेगस्यासमवायिकारणत्वात्तत्रातिव्याप्तिवारणायाद्येति । उत्तरत्र  
स्यन्दने आद्यविशेषणमपि पूर्ववदेव योजनीयम् ॥

(प०) आद्येति । दण्डादिवारणायासमवायीति । रूपादिवारणाय पतनेति ।  
वेगेऽतिव्याप्तिवारणायाद्येति ॥

आद्यस्यन्दनासमवायिकारणं द्रवत्वम् । पृथिव्यप्तेजो-  
वृत्ति । तद्विविधम् । सांसिद्धिकं नैमित्तिकं च । सां-  
सिद्धिकं जले । नैमित्तिकं पृथिवीतेजसोः । पृथिव्यां  
घृतादावग्निसंयोगजं द्रवत्वम् । तेजसि सुवर्णादौ ॥

(प०) आद्यस्यन्दनेति । दण्डादिवारणायासमवायीति । रसादिवारणाय  
स्यन्दनेति ॥

चूर्णादिपिण्डीभावहेतुगुणः स्नेहः । जलमात्रवृत्तिः ॥

(न्या०) स्नेहं लक्षयति—चूर्णादीति । चूर्णादिपिण्डीभाव-  
हेतुत्वे सति गुणत्वं स्नेहस्य लक्षणम् । पिण्डीभावो नाम चूर्णा-  
देर्धारणाकर्षणहेतुभूतो विलक्षणः संयोगः । तादृशसंयोगे स्नेहस्यै-  
वासाधारणकारणत्वं न तु जलादिगतद्रवत्वस्य । तथा सति  
द्रुतसुवर्णादिसंयोगेन चूर्णादेः पिण्डीभावापत्तेः । अतः स्नेह एवा-  
साधारणं कारणम् । विशेषणमात्रोपादाने कालादावतिव्याप्तिर-  
तस्तद्वारणाय विशेष्योपादानम् । वस्तुतस्तु द्रुतजलसंयोगस्यैव  
पिण्डीभावहेतुत्वं स्नेहस्य पिण्डीभावहेतुत्वे मानाभावात् । जले  
द्रुतत्वविशेषणात्करकादिव्यावृत्तिः ॥

(प०) चूर्णादीति । चूर्णं पिष्टं तदेवादिष्यस्य मृत्तिकादेः स चूर्णादिस्तस्य  
पिण्डीभावः संयोगविशेषस्तस्य हेतुर्निमित्तकारणं स्नेह इत्यर्थः । कालादावतिव्या-  
प्तिवारणाय गुणपदम् । रूपादावतिव्याप्तिवारणाय पिण्डीभावेति । चूर्णपदं  
स्पष्टार्थम् ॥



श्रोत्रग्राह्यो गुणः शब्दः । आकाशमात्रवृत्तिः । स द्विविधः । ध्वन्यात्मको वर्णात्मकश्च । तत्र ध्वन्यात्मको भेर्यादौ । वर्णात्मकः संस्कृतभाषादिरूपः ॥

(न्या०) शब्दं लक्षयति—श्रोत्रेति । शब्दत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय गुण इति । रूपादावतिव्याप्तिवारणाय श्रोत्रेति । स त्रिविधः संयोगजो विभागजः शब्दजश्चेति । यथा भेरीदण्डसंयोगजो भांकारादिशब्दः । हस्ताभिघातसंयोगजन्यो मृदङ्गादिशब्दः । वंशे पाठ्यमाने दलद्वयविभागजश्चटचटाशब्दः । शब्दोत्पत्तिदेशमारभ्य श्रोत्रदेशपर्यन्तं वीचीतरङ्गन्यायेन कदम्बमुकुलन्यायेन वा निमित्तपवनेन शब्दधारा जायन्ते । तत्र उत्तरोत्तरशब्दे पूर्वपूर्वशब्दः कारणम् ॥

(प०) श्रोत्रेति । शब्दत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय गुण इति । रूपादिवारणाय श्रोत्रग्राह्य इति । वस्तुतस्तु श्रोत्रोत्पन्नशब्दस्यैव श्रोत्रग्राह्यत्वेन तद्विभेदेऽव्याप्तिवारणाय श्रोत्रग्राह्यजातिमत्त्वे तात्पर्याद्गुणपदमनुपादेयमेव ॥

सर्वव्यवहारहेतुर्गुणो बुद्धिर्ज्ञानम् । सा द्विविधा । स्मृतिरनुभवश्च ॥

(न्या०) बुद्धेर्लक्षणमाह—सर्वव्यवहारेति । व्यवहारः शब्दप्रयोगः । ज्ञानं विना शब्दप्रयोगासंभवाच्छब्दप्रयोगरूपव्यवहारहेतुत्वं ज्ञानस्य लक्षणम् । बुद्धिं विभजते—सा द्विविधेति ।

(प०) बुद्धिलक्षणमाह—सर्वेति । सर्वे ये व्यवहारा आहारविहारादयस्तेषां हेतुर्बुद्धिरित्यर्थः । दण्डादिवारणाय सर्वव्यवहारेति । कालादिवारणायासाधारणेत्यपि देयम् ।

संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः ॥

(न्या०) स्मृतिं लक्षयति—संस्कारेति । संस्कारजन्यत्वविशिष्टज्ञानत्वं स्मृत्येर्लक्षणम् । विशेषणानुपादाने प्रत्यक्षानुभवेऽतिव्याप्तिस्तद्वारणाय विशेषणोपादानम् । संस्कारध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय विशेष्योपादानम् । ध्वंसं प्रति प्रतियोगिनः कारणत्वात् संस्कारध्वंसेऽपि संस्कारजन्यत्वस्य सत्त्वात् । प्रत्यभिज्ञायामतिव्याप्तिवारणाय मात्रपदम् ॥

(प०) संस्कारेति । संस्कारध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय ज्ञानमिति । अनुभवेऽतिव्याप्तिवारणाय संस्कारजन्यमिति । तथापि प्रत्यभिज्ञायामतिव्याप्तिवारणाय संस्कारमात्रजन्यत्वं विवक्षणीयम् । क्वचित्तथैव पाठः । नचैवं सत्यसंभवस्तस्य संस्कारजन्यत्वे सतीन्द्रियार्थसंनिकर्षाजन्यार्थकत्वात् ॥



तद्विन्नं ज्ञानमनुभवः । स द्विविधः । यथार्थोऽयथार्थश्च ॥

(न्या०) अनुभवं लक्षयति—तद्विन्नमिति । तद्विन्नत्वं नाम स्मृतिभिन्नत्वम् । स्मृतिभिन्नत्वविशिष्टज्ञानत्वमनुभवस्य लक्षणम् । तत्र विशेषणानुपादाने स्मृतावतिव्याप्तिः, विशेष्यानुपादाने घटादावतिव्याप्तिरतस्तद्वारणाय विशेषणविशेष्ययोरुभयोरुपादानम् । अनुभवं विभजते—स द्विविध इति ॥

(प०) तदिति । स्मृतित्वावच्छिन्नभिन्नमित्यर्थः । तेन यत्किञ्चित्स्मृतिभिन्नत्वस्य स्मृतौ सत्त्वेऽपि न क्षतिः । घटादावतिव्याप्तिवारणाय ज्ञानमिति । स्मृतिवारणाय तद्विन्नमिति ॥

तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थः । सैव प्रमेत्युच्यते ॥

(न्या०) यथार्थानुभवं लक्षयति—तद्वतीति । तद्वतीत्यत्र सप्तम्यर्थो विशेष्यत्वम् । तच्छब्देन प्रकारीभूतो धर्मो धर्तव्यः । तथाच तद्वद्विशेष्यकत्वे सति तत्प्रकारकानुभवत्वं यथार्थानुभवस्य लक्षणम् । उदाहरणम्—रजते 'इदं रजतम्' इति ज्ञानम् । रजतत्ववद्विशेष्यकत्वे सति रजतत्वप्रकारकं ज्ञानम् । तद्वन्निष्ठविशेष्यतानिरूपिततन्निष्ठप्रकारताशालित्वमिति निष्कर्षः । अन्यथा यथाश्रुते रङ्गरजतयोरिमे रजतरङ्गे इत्याकारकसमूहालम्बनभ्रमेऽतिव्याप्तिः, तत्रापि रजतत्ववद्विशेष्यकत्वरजतत्वप्रकारकत्वयो रङ्गत्ववद्विशेष्यकत्वरङ्गत्वप्रकारकत्वयोः सत्त्वात् । उक्तनिष्कर्षे तु नातिव्याप्तिः, रजतत्वप्रकारताया रजतत्ववद्विशेष्यतानिरूपितत्वाभावात्, एवं रङ्गत्वप्रकारताया रङ्गत्ववद्विशेष्यतानिरूपितत्वाभावात् । किंतु समूहालम्बनभ्रमस्य रङ्गांशे रजतत्वावगाहित्वेन रजतत्वप्रकारताया रङ्गत्ववद्विशेष्यतानिरूपितत्वात् । एवं रजतांशे रङ्गत्वावगाहित्वेन रङ्गत्वप्रकारताया रजतत्ववद्विशेष्यतानिरूपितत्वाच्चेति । नानामुख्यविशेष्यताशालि ज्ञानं समूहालम्बनम् ॥

(प०) तद्वतीति । तद्वति तत्प्रकारो यस्य स तथेत्यर्थः । तद्वद्विशेष्यकतत्प्रकारक इति यावत् । स्मृतिवारणायानुभव इति । अयथार्थानुभववारणाय तद्वतीति । निर्विकल्पकेऽतिव्याप्तिवारणाय तत्प्रकारक इति ॥

तदभाववति तत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थः ॥

(न्या०) अयथार्थानुभवं लक्षयति—तदभाववतीति । अत्रापि पूर्ववत्तदभाववन्निष्ठविशेष्यतानिरूपिततन्निष्ठप्रकारताशालिज्ञानत्वं विवक्षणीयम् । अन्यथा रङ्गरजतयोरिमे रङ्गरजते



इत्याकारकसमूहालम्बनप्रमायामतिव्याप्तिः । एतत्समूहालम्बनस्य रङ्गरजतोभयविशेष्यकत्वेन रजतत्वरङ्गत्वोभयप्रकारकत्वेन च रजतत्वाभाववद्रङ्गविशेष्यकत्वरजतत्वप्रकारकत्वयो रङ्गत्वाभाववद्रजतविशेष्यकत्वरङ्गत्वप्रकारकत्वयोश्च सत्त्वात् । निष्कर्षे तु रजतांशे रजतत्वावगाहित्वेन रङ्गांशे रङ्गत्वावगाहित्वेन च रजतत्वप्रकारताया रजतत्वाभाववद्रङ्गविशेष्यतानिरूपितत्वाभावात् । एवं रङ्गत्वप्रकारताया रङ्गत्वाभाववद्रजतविशेष्यतानिरूपितत्वाभावान्नातिव्याप्तिः । उदाहरणम्—यथा शुक्तौ 'इदं रजतम्' इति ॥

(प०) तदभावेति । तदभाववद्विशेष्यकतत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थानुभव इत्यर्थः । यथा शुक्तौ 'इदं रजतम्' इति ज्ञानम् । स्मृतिवारणायानुभव इति । यथार्थानुभवेऽतिव्याप्तिनिरसनाय तदभाववतीति । निर्विकल्पकवारणाय तत्प्रकारक इति ॥

यथार्थानुभवश्चतुर्विधः । प्रत्यक्षानुमित्युपमितिशाब्दभेदात् ॥

(न्या०) यथार्थानुभवं विभजते—चतुर्विध इति ॥

(प०) यथार्थेति । यथार्थानुभवः प्रत्यक्षमेवेति चार्वाकाः । अनुमितिरपीति काणादबौद्धाः । उपमितिरपीति नैयायिकैकैकदेशिनः । शाब्दमपीति नैयायिकाः । अर्थापत्तिरपीति प्रभाकराः । अनुपलब्धिरपीति भाट्टवेदान्तिनौ । सांभविकैतिह्यकावपीति पौराणिकाः । चैष्टिकेऽपीति तान्त्रिकाः । एतेषां मतेऽस्वरसंसाभाव्य तस्य चातुर्विध्यं स्वयं दर्शितम् ॥

तत्करणमपि चतुर्विधं प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदात् ॥

(न्या०) तत्करणमिति । फलीभूतप्रत्यक्षादिकरणं चतुर्विधमित्यर्थः । प्रत्यक्षादिचतुर्विधप्रमाणानां प्रमाकरणत्वं सामान्यलक्षणम् । एकैकप्रमाणलक्षणं तु वक्ष्यते प्रत्यक्षज्ञानेत्यादिना ॥

(प०) तदिति । यथार्थानुभवात्मकप्रमायाः करणमित्यर्थः ।

असाधारणं कारणं करणम् ॥

(न्या०) करणलक्षणमाह—असाधारणमिति । व्यापारवदसाधारणं कारणं करणमित्यर्थः । असाधारणत्वं च कार्यत्वातिरिक्तधर्मावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताशालित्वम् । यथा दण्डादेर्घटादिकं प्रत्यसाधारणकारणत्वम् । कार्यत्वातिरिक्तो घटत्वादिरूपो धर्मः तदवच्छिन्नकार्यता घटे तन्निरूपितकारणता दण्डे । अतो घटं प्रति दण्डः असाधारणकारणम् । भ्रम्यादिरूपव्यापारवत्त्वाच्च करणम् । साधारणत्वं च कार्यत्वाव-



छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताशालित्वम् । ईश्वरादृष्टादेः कार्यत्वावच्छिन्नं प्रत्येव कारणत्वात्साधारणकारणत्वम् ॥

(प०) असाधारणमिति । कालादिवारणायासाधारणमिति । व्यापारेऽतिव्याप्तिवारणाय व्यापारवदित्यपि देयम् । व्यापारश्च द्रव्यान्यत्वे सति तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकः । ईश्वरेच्छादिवारणाय तज्जन्यत्वे सतीति । कुलालजन्यत्वे सति कुलालजन्यघटजनकत्वं कुलालपुत्रस्याप्यस्त्यतस्तत्रातिव्याप्तिवारणाय प्रथमं सत्यन्तम् । दण्डरूपादिवारणाय तज्जन्यजनक इति ॥

**कार्यनियतपूर्ववृत्ति कारणम् ॥**

(न्या०) कारणं लक्षयति—कार्यनियतेति । कार्यं प्रति नियतत्वे सति पूर्ववृत्तित्वम् । नियतत्वविशेषणानुपादाने पूर्ववर्तिनो रासभादेरपि घटादिकारणत्वं स्यादतो नियतत्वे सतीति विशेषणम् । नियतपूर्ववर्तिनो दण्डरूपादेरपि घटकारणत्वं स्यादतोऽनन्यथासिद्धपदमपि कारणलक्षणे निवेशनीयम् । दण्डरूपादीनां त्वन्यथासिद्धत्वात् ॥

(प०) कार्येति । कार्यान्नियतावश्यंभाविनी पूर्ववृत्तिः पूर्वक्षणवृत्तिर्यस्य तत्तथेत्यर्थः । अनियतरासभादिवारणाय नियतेति । कार्यवारणाय पूर्वेति । दण्डत्वादिवारणायानन्यथासिद्धत्वविशेषणस्यावश्यकत्वेन तत एव रासभादिवारणसंभवे नियतपदमनर्थकमेव । एवंचानन्यथासिद्धकार्यपूर्ववृत्ति कारणमिति फलितम् । अनन्यथासिद्धत्वमन्यथासिद्धिश्च न्यूनत्वम् । अन्यथासिद्धिश्चावश्यकृत्तनियतपूर्ववर्तिनैव कार्यसंभवे तत्सहभूतत्वम् । यथावश्यकृत्तनियतपूर्ववर्तिभिर्दण्डादिभिरेव घटरूपकार्यसंभवे तत्सहभूतत्वं दण्डत्वादौ तदन्यथासिद्धम् ॥

**कार्यं प्रागभावप्रतियोगि ॥**

(न्या०) कार्यं लक्षयति—कार्यमिति । प्रागभावप्रतियोगित्वं कार्यस्य लक्षणम् । कार्योत्पत्तेः पूर्वं 'इह घटो भविष्यति' इति प्रतीतिर्जायते एतत्प्रतीतिविषयीभूतो योऽभावः प्रागभावः तत्प्रतियोगि घटादिरूपं कार्यम् ॥

(प०) प्रागभावेति । कालादिवारणाय प्रागिति । असंभववारणाय प्रतियोगीति ॥

**कारणं त्रिविधं समवाय्यसमवायिनिमित्तभेदात् ॥**

(न्या०) कारणं विभजते—कारणमिति । समवायिकारणमसमवायिकारणं निमित्तकारणं चेति ॥

यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम् । यथा तन्तवः पटस्य । पटश्च स्वगतरूपादेः ॥



(न्या०) समवायिकारणं लक्षयति—यत्समवेतमिति । यस्मिन्समवेतं सत्समवायेन संबद्धं सत्कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणमित्यर्थः । उदाहरणम्—यथा तन्तव इति । तन्तुषु समवायेन संबद्धं सत्पटात्मकं कार्यमुत्पद्यते तत्तन्तवः समवायिकारणमित्यर्थः । सामान्यलक्षणं तु—समवायसंबन्धावच्छिन्नकार्यतानिरूपिततादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नकारणत्वं समवायिकारणत्वमिति । समवायसंबन्धेन घटाधिकरणे कपालादौ कपालादेः तादात्म्यसंबन्धेनैव सत्त्वात्, समवायसंबन्धावच्छिन्नघटत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपिततादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नकारणतायाः कपालादौ सत्त्वाल्लक्षणसमन्वयः । जन्यभावत्वावच्छिन्नं प्रति तादात्म्यसंबन्धेन द्रव्यस्यैव कारणत्वाज्जन्यभावेषु द्रव्यगुणकर्मसु त्रिषु द्रव्यमेव समवायिकारणम् । द्रव्ये तु द्रव्यावयवाः समवायिकारणम् । अतो गुणादावपि द्रव्यमेव समवायिकारणमित्याशयेनाह—पटश्च स्वगतरूपादेरिति । समवायिकारणमित्यनुषज्यते ॥

(प०) यदिति । यस्मिन्समवायसंबन्धेन वर्तमानं तदित्यर्थः । चकादिवारणाय समवेतमिति ॥

कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतं सत् कारणमसमवायिकारणम् । यथा तन्तुसंयोगः पटस्य । तन्तुरूपं पटरूपस्य ॥

(न्या०) असमवायिकारणं लक्षयति—कार्येणेति । कार्येण सहैकस्मिन्नर्थे समवेतं सत् यत् कारणं तत् असमवायिकारणमित्यन्वयः । कारणेन सहैकस्मिन्नर्थे समवेतं सत् यत् कारणं तत्समवायिकारणमित्यन्वयः । अत्र कारणेनेत्यस्य स्वकार्यसमवायिकारणेनेत्यर्थः । जन्यद्रव्यमात्रे अवयवसंयोगस्यैवासमवायिकारणत्वात्पटात्मककार्ये तदवयवतन्तुसंयोगस्यैवासमवायिकारणत्वमिति दर्शयति—यथा तन्तुसंयोगः पटस्येति । पटात्मककार्येण सहैकस्मिन्नर्थे तन्तौ समवेतं सत्समवायसंबन्धेन वर्तमानं सत्पटात्मककार्यं प्रति तन्तुसंयोगात्मकं कारणमसमवायिकारणमित्यर्थः । द्वितीयमसमवायिकारणं कारणेन सहेत्यादिना पूर्वोक्तं तदुदाहरति—तन्तुरूपमिति । कारणेन सह पटरूपसमवायिकारणीभूतपटेन सह एकस्मिन्नर्थे तन्तुरूपेऽर्थे समवेतं सत्समवायसंबन्धेन वर्तमानं सत् तन्तुरूपं पटगतरूपं प्रति



कारणं भवति, अतोऽसमवायिकारणं तन्तुरूपं पटगत रूपस्य । सामान्यलक्षणं तु समवायसंबन्धावच्छिन्नकार्यतानिरूपिता या समवायस्वसमवायिसमवेतत्वान्यतरसंबन्धावच्छिन्ना कारणता तदाश्रयत्वमसमवायिकारणत्वमिति । द्रव्यासमवायिकारणीभूतावयवसंयोगादौ तु समवायसंबन्धावच्छिन्नघटत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपिता समवायसंबन्धावच्छिन्ना कपालद्वयसंयोगनिष्ठा कारणता कपालद्वयसंयोगे वर्तते । एवमाद्यपतनक्रियायामाद्यस्यन्दनक्रियायां च गुरुत्वद्रवत्वे असमवायिकारणे भवतः । आद्यपतनक्रियां प्रति आद्यस्यन्दनक्रियां प्रति च समवायसंबन्धेनैव तयोः कारणत्वात् । अवयविगुणादौ त्ववयवगुणादेः स्वसमवायिसमवेतत्वसंबन्धेनैव कारणत्वात्, तत्संबन्धावच्छिन्नकारणताश्रयत्वमवयवगुणादौ वर्तते । अवयवगुणकपालतन्तुरूपादेः स्वशब्दग्राह्यकपालरूपतन्तुरूपसमवायिकपालतन्तुसमवेतत्वसंबन्धेन घटपटादौ सत्त्वात् ॥

(प०) कार्येणेति । कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतत्वे सति आत्मविशेषगुणभिन्नत्वे सति यत् कारणं तदसमवायिकारणम् । तन्तुसंयोगादावव्याप्तिवारणाय कार्येणेति । तन्तुरूपादावव्याप्तिवारणाय कारणेनेति । आत्मविशेषगुणेऽतिव्याप्तिवारणाय आत्मविशेषगुणभिन्नत्वे सतीति । विशेषवारणाय कारणमिति ॥

Centre for the Arts

तदुभयभिन्नं कारणं निमित्तकारणम् । यथा तुरीवेमादिकं पटस्य ॥

(न्या०) निमित्तकारणं लक्षयति—तदुभयभिन्नमिति । समवायिकारणभिन्नत्वे सति असमवायिकारणभिन्नत्वे सति कारणत्वं निमित्तकारणत्वमित्यर्थः ॥

(प०) तदुभयभिन्नं कारणं निमित्तकारणमिति । समवाय्यसमवायिकारणवारणाय तदुभयभिन्नमिति । विशेषादावतिव्याप्तिवारणाय कारणमिति ॥

तदेतन्निविधकारणमध्ये यदसाधारणं कारणं तदेव करणम् ॥

(न्या०) तदेतदिति । यदसाधारणमिति । व्यापारवत्त्वे सतीत्यपि पूरणीयम् । अन्यथा तन्तुकपालसंयोगयोरतिव्याप्तिः । तन्तुकपालसंयोगयोरपि कार्यत्वातिरिक्तपटत्वघटत्वावच्छिन्नं प्रति कारणत्वादसाधारणत्वमस्त्येवेत्यतस्तत्र करणत्ववारणाय व्यापारवत्त्वे सतीति करणलक्षणे विशेषणं देयम् । व्यापारवत्त्वं च तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वम् । भवति हि



दण्डजन्यत्वे सति दण्डजन्यघटजनकत्वाद्भ्रम्यादेर्दण्डव्यापारत्वम् । एवं कपालसंयोगतन्तुसंयोगादेरपि कपालतन्तुव्यापारत्वं कपालतन्तुजन्यत्वे सति कपालतन्तुजन्यघटपटजनकत्वात् । करणलक्षणेऽसाधारणत्वविशेषणानुपादाने ईश्वरादृष्टादेरपि व्यापारवत्कारणत्वस्य सत्त्वात्, तत्रातिव्याप्तिवारणायासाधारणेति विशेषणम् ॥

(प०) तदेतदिति । यस्मात्कारणात्करणत्वघटकं कारणमुपदर्शितं तस्मादेतन्निविधसाधकमध्ये यत्साधकतमं तदेव कारणमिति भावः ॥ इति कारणप्रपञ्चः ॥

तत्र प्रत्यक्षज्ञानकरणं प्रत्यक्षम् ॥

(न्या०) षड्विधेन्द्रियभूतप्रत्यक्षप्रमाणस्य लक्षणमाह—तत्रेति । प्रमाभूतेषु प्रत्यक्षात्मकं यज्ज्ञानं चाक्षुषादिप्रत्यक्षं तत्प्रति व्यापारवत्साधारणं कारणमिन्द्रियं भवति । अतः प्रत्यक्षज्ञानकरणत्वं प्रत्यक्षस्य लक्षणम् । आद्यसंनिकर्षातिरिक्तचतुर्विधसंनिकर्षाणां समवायरूपत्वेनेन्द्रियजन्यत्वाभावाद्व्यापारत्वं न संभवतीति इन्द्रियमनःसंयोगस्यैव बाह्यप्रत्यक्षे जननीये इन्द्रियव्यापारता बोध्या । मानसप्रत्यक्षे त्वात्ममनःसंयोगस्यैव सा बोध्या ॥

Indira Gandhi National  
Centre for the Arts

(प०) तत्रेति । प्रमाणचतुष्टयमध्ये । दण्डादिवारणाय ज्ञानेति । अनुमानादिवारणाय प्रत्यक्षेति ॥

[ ज्ञानाकरणकं ज्ञानं प्रत्यक्षम् ]

इन्द्रियार्थसंनिकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम् । तद्विविधम् ।

निर्विकल्पकं सविकल्पकं चेति ॥

(न्या०) प्रत्यक्षप्रमाणलक्षणमुक्त्वा प्रत्यक्षप्रमाणलक्षणमाह—

[ ज्ञानाकरणकमिति । क्षेपकं लक्षणमिदम् । ज्ञानं व्याप्तिज्ञानं सादृश्यज्ञानं पदज्ञानं च तदेव करणं येषां ते ज्ञानकरणका अनुमित्युपमितिशाब्दाः । ज्ञानकरणकं न भवतीति ज्ञानाकरणकम् । तत्त्वं प्रत्यक्षलक्षणम् । इदं लक्षणमीश्वरप्रत्यक्षसाधारणम् । ईश्वरप्रत्यक्षस्याजन्यत्वात्, जन्यप्रत्यक्षे च इन्द्रियाणामेव करणत्वं न तु ज्ञानस्येति तयोरुभयोः संग्रहः । ]

इन्द्रियार्थसंनिकर्षेति । जन्यप्रत्यक्षस्यैव लक्ष्यत्वमित्यभिप्रायेणेदं लक्षणम् । प्रत्यक्षं विभज्यते—निर्विकल्पकमिति ।

(प०) इन्द्रियार्थेति । इन्द्रियं चक्षुरादिकमर्थो घटादिस्तयोः संनिकर्षः सं-



योगादिस्तज्जन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षमित्यर्थः । संनिकर्षध्वंसवारणाय ज्ञानमिति । अनु-  
मित्यादिवारणायैन्द्रियार्थसंनिकर्षेति । ननु सोपनेत्रचक्षुषा कथं पदार्थग्रहणं चक्षुष-  
उपनेत्रनिरुद्धत्वेन पदार्थेन सह संनिकर्षाभावात् । कथं वा स्वच्छजाह्नवीसलिलावृत-  
मत्स्यादेश्चक्षुषा ग्रहणमिति चेन्न । स्वच्छद्रव्यस्य तेजोनिरोधकत्वाभावेन तदन्तश्चक्षुः-  
प्रवेशसंभवात् । न चेश्वरप्रत्यक्षेऽव्याप्तिरिति वाच्यम् । अत्र जन्यप्रत्यक्षस्यैव  
लक्षितत्वात् ।

तत्र निष्प्रकारकं ज्ञानं निर्विकल्पकम् ॥

(न्या०) तल्लक्षयति—तत्र निष्प्रकारकमिति । प्रकारता-  
शून्यज्ञानत्वमेव निर्विकल्पकत्वमित्यर्थः । निर्विकल्पके चतुर्थी  
विषयता स्वीक्रियते । न तु त्रिविधविषयतामध्ये कापि तत्रास्ति ।  
अतो विशेष्यताशून्यज्ञानत्वं संसर्गताशून्यज्ञानत्वमित्यपि लक्षणं  
संभवति ॥

(प०) तत्र निष्प्रकारेति । सविकल्पकेऽतिव्याप्तिवारणाय निष्प्रकारकमिति ।  
प्रकारवारणाय ज्ञानमिति ॥

सप्रकारकं ज्ञानं सविकल्पकम् । यथा डित्थोऽयं ब्राह्म-  
णोऽयं श्यामोऽयमिति ॥

Indira Gandhi National

(न्या०) सविकल्पकं लक्षयति—सप्रकारकमिति । वि-  
षयताया ज्ञाननिरूपितत्वाज्ज्ञानस्य विषयतानिरूपकत्वेन प्रका-  
रतानिरूपकज्ञानत्वं सविकल्पकस्य लक्षणम् । एवं विशेष्यतानि-  
रूपकज्ञानत्वं संसर्गतानिरूपकज्ञानत्वमित्यपि लक्षणं संभवति ।  
उदाहरणम्—यथेति । इदन्त्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितडि-  
त्थत्वप्रकारताशालिज्ञानं ब्राह्मणत्वप्रकारताशालिज्ञानं च सवि-  
कल्पकमित्यर्थः ॥

(प०) सप्रकारकेति । घटादिवारणाय ज्ञानमिति । निर्विकल्पकवारणाय  
सप्रकारकमिति ॥

प्रत्यक्षज्ञानहेतुरिन्द्रियार्थसंनिकर्षः षड्विधः । संयोगः सं-  
युक्तसमवायः संयुक्तसमवेतसमवायः समवायः समवेत-  
समवायो विशेषणविशेष्यभावश्चेति ॥

(न्या०) चाक्षुषादिषड्विधप्रत्यक्षकारणीभूतान् षड्विधसंनिक-  
र्षान्विभजते—संयोग इत्यादिना । द्रव्यवृत्तिलौकिकवि-  
षयतासंबन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति चक्षुःसंयोगः कारणम् ।  
द्रव्यसमवेतवृत्तिलौकिकविषयतासंबन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं



प्रति चक्षुःसंयुक्तसमवायस्य हेतुत्वम् । द्रव्यसमवेतसमवेतवृत्ति-  
 लौकिकविषयतासंबन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति चक्षुःसंयुक्तस-  
 मवेतसमवायस्य हेतुत्वम् । द्रव्यग्राहकाणीन्द्रियाणि चक्षुस्त्वङ्-  
 मनांसि त्रीण्येव । अन्यानि घ्राणरसनश्रवणानि गुणग्राह-  
 काणि । अतस्त्वगिन्द्रियस्थले द्रव्यवृत्तिलौकिकविषयतासंबन्धेन  
 त्वाचप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति त्वक्संयोगस्य हेतुता । एवं द्रव्य-  
 समवेतत्वाचप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति त्वक्संयुक्तसमवायस्य हेतुता ।  
 द्रव्यसमवेतसमवेतोष्णत्वशीतत्वादिजातिस्पर्शनप्रत्यक्षे त्वक्सं-  
 युक्तसमवेतसमवायस्य हेतुता । एवमात्ममानसप्रत्यक्षे मनःसं-  
 योगस्य हेतुता । आत्मसमवेतसुखादिमानसप्रत्यक्षे मनःसंयुक्तस-  
 मवायस्य हेतुता । आत्मसमवेतसमवेतसुखत्वादिमानसप्रत्यक्षे  
 मनःसंयुक्तसमवेतसमवायस्य हेतुता । रसनघ्राणयोस्तु रसग-  
 न्धतद्गतजातिग्राहकत्वेन द्वितीयतृतीययोः संनिकर्षयोरेव तत्र हे-  
 तुता वाच्या । श्रवणेन्द्रियस्याकाशरूपत्वेन शब्दस्याकाशगुणत्वेन  
 श्रवणेन्द्रियेण च समं शब्दस्य समवायः संनिकर्षः । शब्दवृत्ति-  
 शब्दत्वकत्वस्वत्वादिजातिविषयकश्रावणप्रत्यक्षे समवेतसमवा-  
 यस्य हेतुता । अभावप्रत्यक्षे विशेषणविशेष्यभावो नाम विशेषणता-  
 संनिकर्षः । पञ्चविधसंनिकर्षोपरि विशेषणता योजनीया । त-  
 थाहि—द्रव्याधिकरणकाभावप्रत्यक्षे इन्द्रियसंयुक्तविशेषणता ।  
 द्रव्यसमवेताधिकरणकाभावप्रत्यक्षे इन्द्रियसंयुक्तसमवेतविशेष-  
 णता । द्रव्यसमवेतसमवेताधिकरणकाभावप्रत्यक्षे इन्द्रियसंयुक्त-  
 समवेतसमवेतविशेषणता । संयोगस्थाने संयुक्तपदं घटयित्वा  
 समवायस्थाने समवेतपदं घटयित्वा अभावप्रत्यक्षस्थले नि-  
 र्वाह्यम् । यथा घटद्रव्यसमवेतं घटत्वं पृथ्वीत्वादिकं रूपादिकं  
 च । तत्र नीलादौ पीतत्वाभावः घटत्वादिजातौ पटत्वाभावश्च  
 वर्तते स चाभावः संयुक्तसमवेतविशेषणतासंनिकर्षेण गृह्यते ।  
 एवं नीलत्वादिजातौ पीतत्वाभावोऽपीन्द्रियसंयुक्तसमवेतसम-  
 वेतविशेषणतासंनिकर्षेण गृह्यते । घटसमवेतं नीलं तत्समवेतं  
 नीलत्वं तद्विशेषणता पीतत्वाभावे वर्तत इति संक्षेपः ॥ इति  
 प्रत्यक्षपरिच्छेदः ॥

(प०) प्रत्यक्षेति । तच्च प्रत्यक्षं षड्विधं घ्राणजरासनचाक्षुषश्रौत्रत्वाचमानसभे-  
 दात् । ननु प्रत्यक्षकारणीभूतेन्द्रियनिष्ठप्रत्यक्षसामानाधिकरण्यघटकः संनिकर्षः  
 क इत्यपेक्षायां तं विभज्य दर्शयति—प्रत्यक्षेति । लौकिकप्रत्यक्षेत्यर्थः ॥

चक्षुषा घटप्रत्यक्षजनने संयोगः संनिकर्षः ॥

(प०) संयोगमुदाहरति—चक्षुषेति । तथाच द्रव्यचाक्षुषत्वाचमानसेषु संयोग  
 एव संनिकर्ष इति भावः ॥



घटरूपप्रत्यक्षजनने संयुक्तसमवायः संनिकर्षः । चक्षुःसंयुक्ते घटे रूपस्य समवायात् ॥

(प०) घटरूपेति । चक्षुषा इत्यनुषज्जते । तथाच द्रव्यसमवेतचाक्षुषत्वाचमानसरासनघ्राणजेषु संयुक्तसमवाय एव संनिकर्ष इत्यर्थः ॥

रूपत्वसामान्यप्रत्यक्षे संयुक्तसमवेतसमवायः संनिकर्षः ।

चक्षुःसंयुक्ते घटे रूपं समवेतं तत्र रूपत्वस्य समवायात् ॥

(प०) रूपत्वेति । रूपत्वात्मकं यत्सामान्यं तत्प्रत्यक्ष इत्यर्थः । अत्रापि चक्षुषा इत्यनुषज्जते । तथाच द्रव्यसमवेतसमवेतचाक्षुषरासनघ्राणजस्पर्शनमानसेषु संयुक्तसमवेतसमवाय एव संनिकर्ष इति भावः । अथ द्रव्यतत्समवेतप्रत्यक्षेऽपि संयुक्तसमवेतसमवाय एव संनिकर्षोऽस्त्विति चेन्नैतत् । ईश्वरात्मादे(आत्म-सुखादे?)रन्ध्यक्षत्वप्रसङ्गात् ॥

श्रोत्रेण शब्दसाक्षात्कारे समवायः संनिकर्षः । कर्णविवर-

वर्त्याकाशस्य श्रोत्रत्वाच्छब्दस्याकाशगुणत्वात् गुणगुणि-

नोश्च समवायात् ॥ शब्दत्वसाक्षात्कारे समवेतसमवायः

संनिकर्षः । श्रोत्रसमवेते शब्दे शब्दत्वस्य समवायात् ॥

(प०) समवायसंनिकर्षमुदाहरति—श्रोत्रेणेति । जननीय इति शेषः । ननु श्रोत्रशब्दयोः कथं समवाय इत्यपेक्षमाणं प्रति तमुपपाद्य दर्शयति—कर्णेति । अथ समवायस्य नित्यत्वेन शब्दप्रत्यक्षे को व्यापार इति चेत् शब्दः, श्रोत्रमनःसंयोगो वेति गृहाण । शब्दत्वेति । श्रोत्रेण जननीये इत्यनुकर्षशेषौ ॥

अभावप्रत्यक्षे विशेषणविशेष्यभावः संनिकर्षः । घटा-

भाववद्भूतलमित्यत्र चक्षुःसंयुक्ते भूतले घटाभावस्य

विशेषणत्वात् ॥

(प०) विशेषणेति । विशेषणभावो विशेष्यभावश्चेति बोध्यम् । इन्द्रियसंबद्ध-विशेषणत्वमिन्द्रियसंबद्धविशेष्यत्वमिति यावत् । विशेषणभावसंनिकर्षमुपपाद्य दर्शयति—घटाभाववदिति । इह भूतले घटो नास्तीत्यादौ विशेष्यतासंनिकर्षोऽवसेयः । सप्तम्यन्तस्य विशेषणत्वात् ॥

एवं संनिकर्षषट्कजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम् ॥

(प०) प्रत्यक्षप्रमाणमुपसंहरति—एवमिति । उपदर्शितक्रमेणेत्यर्थः ।

तत्करणमिन्द्रियं तस्मादिन्द्रियं प्रत्यक्षप्रमाणमिति

सिद्धम् ॥

(प०) ननु सिद्धान्ते प्रत्यक्षज्ञानकरणमिन्द्रियार्थसंनिकर्षः किं न स्यादिति चेन्नेत्याह—तत्करणमिति । प्रत्यक्षप्रमाणं निगमयति—तस्मादिति ।



प्रत्यक्षप्रमाकरणत्वादित्यर्थः । सिद्धमिति । न्यायसिद्धान्ते सिद्धमित्यर्थः ।  
इति पदकृत्यके प्रत्यक्षपरिच्छेदः ॥

### अनुमितिकरणमनुमानम् ॥

(न्या०) अनुमानं लक्षयति—अनुमितीति । अनुमितौ व्याप्तिज्ञानं करणं, परमर्शो व्यापारः, अनुमितिः फलं, कार्यमित्यर्थः । परामर्शस्य व्याप्तिज्ञानजन्यत्वाद्याप्तिज्ञानजन्यानुमितिजनकत्वात्तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वरूपव्यापारत्वमुपपन्नम् । अनुमितिकरणत्वमनुमानस्य लक्षणम् । अनुमानं व्याप्तिज्ञानम् । एतस्य परामर्शरूपव्यापारद्वारा अनुमितिं प्रत्यसाधारणकारणतयानुमितिकरणत्वमुपपन्नम् ॥

(प०) प्रत्यक्षानुमानयोः कार्यकारणभावसंज्ञातिमभिप्रेत्य प्रत्यक्षानन्तरमनुमानं निरूपयति—अनुमितीति । अनुमितेः करणमनुमानमित्यर्थः । तच्च लिङ्गपरामर्श एवेति निवेदयिष्यते । कुठारादावतिव्याप्तिवारणाय अनुमितीति । प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिवारणाय अन्विति ॥

### परामर्शजन्यं ज्ञानमनुमितिः ।

(न्या०) परामर्शजन्यमिति । परामर्शजन्यत्वविशिष्टज्ञानत्वमनुमितेर्लक्षणम् । अत्र ज्ञानत्वमात्रोपादाने प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिः, अतस्तद्वारणाय परामर्शजन्यत्वे सतीति विशेषणोपादानम् । परामर्शजन्यत्वमात्रोक्तौ परामर्शध्वंसेऽतिव्याप्तिरतस्तद्वारणाय ज्ञानत्वोपादानम् ॥

(प०) नन्वनुमितेरेव दुर्निरूपत्वात्तद्वटितानुमानमपि दुर्निरूपमित्यत आह—परामर्शेति । प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिवारणाय परामर्शजन्यमिति । परामर्शध्वंसवारणाय ज्ञानमिति । परामर्शप्रत्यक्षवारणाय हेत्वविषयकमित्यपि बोध्यम् ॥

व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानं परामर्शः । यथा वह्निव्याप्यधूमवानयं पर्वत इति ज्ञानं परामर्शः ॥ तज्जन्यं पर्वतो वह्निमानिति ज्ञानमनुमितिः ॥

(न्या०) अनुमितिलक्षणघटकीभूतपरामर्शलक्षणमाचष्टे—व्याप्तिविशिष्टेति । व्याप्तिविशिष्टं च तत्पक्षधर्मताज्ञानं चेति कर्मधारये विशिष्टपदस्य प्रकारतानिरूपकपरत्वात्पक्षधर्मताज्ञानमित्यत्र षष्ठ्या विषयत्वबोधनात् । धर्मतापदस्य संबन्धार्थकत्वाच्च कर्मधारयसमासे समस्यमानपदार्थयोरभेदसंसर्गलाभेन च व्याप्तिप्रकारकाभिन्नं यत्पक्षसंबन्धविषयकं ज्ञानं तत्परामर्श इति लभ्यते । एवं सति धूमो वह्निव्याप्यः आलोकवान्पर्वत इत्याका-



रकसमूहालम्बने परामर्शलक्षणमस्तीत्यतिव्याप्तिस्तद्वारणाय पक्ष-  
निष्ठविशेष्यतानिरूपिता या हेतुनिष्ठा प्रकारता तन्निरूपिता या  
व्याप्तिनिष्ठा प्रकारता तच्छालि ज्ञानं परामर्श इति निष्कर्षः ।  
एतादृशपरामर्शजन्यत्वे सति ज्ञानत्वमनुमितेर्लक्षणम् । अनुमि-  
तिपरामर्शयोर्विशिष्य कार्यकारणभावश्चेत्तथम् ॥ पर्वतत्वावच्छि-  
न्नोद्देश्यतानिरूपित-संयोगसंबन्धावच्छिन्नवह्नित्वावच्छिन्न-वि-  
धेयताकानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति वह्निव्याप्तिप्रकारतानिरूपिता  
या धूमत्वावच्छिन्ना प्रकारता तन्निरूपिता पर्वतत्वावच्छिन्ना  
विशेष्यता तच्छालिनिर्णयः कारणम् ॥ स च निर्णयः वह्निव्या-  
प्यधूमवान्पर्वत इत्याकारको बोध्यः ॥

(प०) व्याप्तिविशिष्टेति । विषयितासंबन्धेन व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानं  
परामर्श इत्यर्थः । घटादिज्ञानवारणाय पक्षधर्मतेति । धूमवान्पर्वत इत्यादिज्ञानवा-  
रणाय व्याप्तिविशिष्टेति । तदिति । परामर्शजन्यमित्यर्थः ।

यत्र यत्र धूमस्तत्राग्निरिति साहचर्यनियमो व्याप्तिः ॥

(न्या०) यत्र यत्रेति । यत्रपदवीप्सावशाद्धूमाधिकरणे  
यावति वह्निमत्त्वलाभाद्यावत्पदमहिम्ना वह्नेर्धूमव्यापकत्वं लब्धम् ॥  
तदेव स्पष्टयति—साहचर्यनियम इति । एतदर्थस्तु नि-  
यतसाहचर्यं व्याप्तिरिति । नियतत्वं व्यापकत्वम् ॥ साहचर्यं  
नाम सामानाधिकरण्यम् । तथाच धूमनियतवह्निसामानाधि-  
करण्यं व्याप्तिरित्यर्थः । अत्र वह्नेर्धूमव्यापकत्वं नाम धूमसमा-  
नाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मवत्त्वम् । तथा-  
हि—धूमाधिकरणे पर्वतचत्वरमहानसादौ वर्तमानो योऽभावः  
घटत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावः न तु वह्नित्वावच्छिन्नप्र-  
तियोगिताकाभावः । कुतः । पर्वतादौ वह्नेः सत्त्वात् । एवं सति  
धूमाधिकरणे पर्वतचत्वरदौ वर्तमानस्य घटाद्यभावस्य प्रतियो-  
गितावच्छेदकं घटत्वादिकमनवच्छेदकं वह्नित्वं वह्नौ वर्ततेऽतो  
धूमव्यापकत्वं वह्नौ वर्तते । इयमन्वयव्याप्तिः सिद्धान्तानुसारेण ।  
पूर्वपक्षव्याप्तिस्तु—साध्याभाववदवृत्तित्वम् । साध्यतावच्छेदक-  
संबन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताक-प्रतियो-  
गितावच्छेदकसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नवैय-

१ वह्निमान्धूमादित्यादौ समवायेन वह्न्यभावमादायाव्याप्तिवारणार्थं प्रतियोगितायां  
प्रथममवच्छिन्नान्तं विशेषणम् । २ तत्रैव महानसीयवह्नाद्यभावमादायाव्याप्तिवारणाय  
द्वितीयमवच्छिन्नान्तम् ।



धिकरण्यावच्छिन्ना-भाववन्निरूपितहेतुतावच्छेदकसंबन्धावच्छिन्नवृत्तित्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव इति निष्कर्षः । तच्च केवलान्वयिन्यव्याप्तमिति सिद्धान्तानुसरणम् ॥

(प०) यत्रयत्रेति । यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निरिति व्याप्तेरभिनयः । तत्र साहचर्यनियम इति लक्षणम् । सह चरतीति सहचरस्तस्य भावः साहचर्यं सामानाधिकरण्यामिति यावत् । तस्य नियमो व्याप्तिरित्यर्थः । स चाव्यभिचरितत्वम् । तच्च व्यभिचाराभावः । व्यभिचारश्च साध्याभाववद्वृत्तित्वम् । तथाच साध्याभाववद्वृत्तित्वं व्याप्तिरिति पर्यवसन्नम् । महानसं वह्निमत, धूमादित्यादौ साध्यो वह्निस्तदभाववान् जलहृदादिस्तद्वृत्तित्वं नौकादाववृत्तित्वं प्रकृते हेतुभूते धूमे इति कृत्वा लक्षणसमन्वयः । धूमवान् वह्नेरित्यादौ साध्यो धूमस्तदभाववदयोगोलकं तद्वृत्तित्वमेव वह्निदाविति नातिव्याप्तिः ॥

**व्याप्यस्य पर्वतादिवृत्तित्वं पक्षधर्मता ॥**

(प०) ननु ज्ञातेयं व्याप्तिः पक्षधर्मताज्ञानमित्यत्र का नाम पक्षधर्मता इत्यपेक्षमाणं प्रति तत्स्वरूपं निरूपयति—व्याप्यस्येति । व्याप्यो नाम व्याप्त्याश्रयः । स च धूमादिरेव तस्य पर्वतादिवृत्तित्वं पक्षधर्मतेत्यर्थः ॥

**अनुमानं द्विविधं । स्वार्थं परार्थं च ॥**

(न्या०) अनुमानं विभजते—स्वार्थमिति ।

(प०) अथ कथमनुमानमनुमितिकरणं कथं वा तस्मादनुमितेर्जनिरिति जिज्ञासमानं प्रति लाघवादानुमानं विभागमुखेनैव बुबोधयिष्येऽनुमानं विभजते—अनुमानमिति । द्वैविध्यं दर्शयति—स्वार्थं परार्थं चेति ॥

स्वार्थं स्वानुमितिहेतुः । तथाहि—स्वयमेव भूयोदर्शनेन यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निरिति महानसादौ व्याप्तिं गृहीत्वा पर्वतसमीपं गतस्तद्गते चाग्नौ संदिहानः पर्वते धूमं पश्यन् व्याप्तिं स्मरति 'यत्र यत्र धूमस्तत्राग्निः' इति । तदनन्तरं वह्निव्याप्यधूमवानयं पर्वत इति ज्ञानमुत्पद्यते । अयमेव लिङ्गपरामर्श इत्युच्यते । तस्मात्पर्वतो

१ कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वादित्यादावव्याप्तिवारणायाभावे वैयधिकरण्यावच्छिन्नान्तं विशेषणम्; प्रतियोगितावच्छेदकसंबन्धेन प्रतियोगिना यदनधिकरणं तद्वृत्तिरिति तस्यार्थः । २ वह्निमान्धूमादित्यादौ तादृशसाध्याभावाधिकरणे स्वावयवे धूमस्य समवायेन वृत्तित्वादव्याप्तिरतस्तद्वारणाय वृत्तित्वे हेतुतावच्छेदकसंबन्धावच्छिन्नत्व-विशेषणम् । ३ धूमवान्वह्नेरित्यादौ हृदादिरूपयत्किञ्चित्साध्याभावाधिकरणवृत्तित्वाभावस्य वह्नौ सत्त्वादतिव्याप्तिरतस्तद्वारणाय वृत्तित्वसामान्याभावो विवक्षित इति बोध्यम् ॥ ४ इदं वाच्यं, ज्ञेयत्वादित्यादौ ।



वह्निमानिति ज्ञानमनुमितिरुत्पद्यते । तदेतत्स्वार्थानु-  
मानम् ॥

(न्या०) स्वार्थानुमानं नाम न्यायाप्रयोज्यानुमानम् ॥

(प०) स्वार्थः प्रयोजनं यस्मात् तत्स्वार्थमिति समासः । स्वप्रयोजनं च  
स्वस्यानुमेयप्रतिपत्तिः । एवं परार्थमित्यस्यापि । अयमिति । व्याप्तिवलेन लीन-  
मर्थं गमयतीति लिङ्गम् । तच्च धूमादि । तस्य परामर्शो ज्ञानविशेष इत्यर्थः ।  
तस्मादिति । लिङ्गपरामर्शादित्यर्थः । स्वार्थानुमानमुपसंहरति—तदेतदिति ।  
यस्मादिदं स्वप्रतिपत्तिहेतुस्तस्मादेतत्स्वार्थानुमानमित्यर्थः ॥

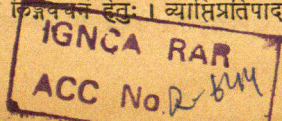
यत्तु स्वयं धूमादग्निमनुमाय परं प्रति बोधयितुं पञ्चा-  
वयववाक्यं प्रयुज्यते तत्परार्थानुमानम् । यथा पर्वतो  
वह्निमान् । धूमवत्त्वात् । यो यो धूमवान्स स वह्निमान्  
यथा महानसम् । तथा चायम् । तस्मात्तथेति । अनेन  
प्रतिपादितालिङ्गात्परोऽप्यग्निं प्रतिपद्यते ॥

(न्या०) न्यायप्रयोज्यानुमानं परार्थानुमानम् । न्यायत्वं च  
प्रतिज्ञाद्यवयवपञ्चकसमुदायत्वम् । अवयवत्वं च प्रतिज्ञाद्यन्यत-  
मत्वम् ॥

(प०) कमप्राप्तं परार्थानुमानमाह—यत्त्विति । यत्पञ्चावयववाक्यं प्रयुज्यते  
तत्परार्थानुमानमिति संबन्धः । पञ्चावयवेति । अथावयवत्वं नाम द्रव्यसमवा-  
यिकारणत्वम् । प्रतिज्ञादिषु तदसंभवात्कथमेतेऽवयवाः स्युरिति चेदनुमानवा-  
क्यैकदेशत्वात् अवयवा इत्युपचर्यत इति गृहाण । नन्वेवमपि पञ्चावयववा-  
क्यस्यानुमानत्वमेव न विचारसहं तस्य लिङ्गपरामर्शत्वाभावादिति चेन्मैवम् । लिङ्ग-  
परामर्शप्रयोजकलिङ्गप्रतिपादकत्वेनानुमानमित्युपचारमात्रत्वात् । तदुदाहरति—  
यथेति । तथा चायमिति । अयं च पर्वतस्तथा वह्निव्याप्यधूमवानित्यर्थः ।  
तस्मात्तथेति । वह्निव्याप्यधूमवत्त्वाद्बह्निमानित्यर्थः । अनेनेति । अनेन प-  
ञ्चावयववाक्येनेत्यर्थः ॥

प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनानि पञ्चावयवाः । प-  
र्वतो वह्निमानिति प्रतिज्ञा ॥ धूमवत्त्वादिति हेतुः । यो  
यो धूमवान् स स वह्निमानित्युदाहरणम् । तथा चाय-  
मित्युपनयः । तस्मात्तथेति निगमनम् ॥

(प०) ननु पञ्चावयववाक्यमित्यत्र के ते पञ्चावयवा अतस्तान्दर्शयति—प्र-  
तिज्ञेति । प्रतिज्ञाद्यन्यतमत्वमवयवत्वम् । साध्यविशिष्टपक्षबोधकवचनं प्रतिज्ञा ।  
पञ्चम्यन्तं तृतीयान्तं वा लिङ्गवचनं हेतुः । व्याप्तिप्रतिपादकदृष्टान्तवचनमुदाहर-





णम् । उदाहृतव्याप्तिविशिष्टत्वेन हेतोः पक्षधर्मताप्रतिपादकवचनमुपनयः । पक्षे साध्यस्याबाधितत्वप्रतिपादकवचनं निगमनम् । इदमेव लक्षणं हृदि निधाय प्रतिज्ञादीन्विशिष्य दर्शयति—पर्वतो वह्निमानित्यादिना ॥

**स्वार्थानुमितिपरार्थानुमित्योल्लिङ्गपरामर्श एव करणम् ।**

**तस्माल्लिङ्गपरामर्शोऽनुमानम् ॥**

(प०) लिङ्गेति । ज्ञायमानं लिङ्गमनुमितिकरणमिति वृद्धोक्तं न युक्तम्, इयं यज्ञशाला वह्निमती अतीतधूमादित्यादौ लिङ्गाभावेऽप्यनुमितिदर्शनादित्यभिप्रायवौ-  
लिङ्गपरामर्श एव करणमित्याचष्टे—**लिङ्गपरामर्श एवेति । अनुमानमुपसंहर-**  
**ति—तस्मादिति । अनुमितिकरणत्वादित्यर्थः । अयमेव तृतीयज्ञानमित्युच्यते ।**  
तथाहि—महानसादौ धूमाभ्योर्व्याप्तौ गृह्यमाणायां यद्धूमज्ञानं तदादिमम् । पक्षे यद्धूमज्ञानं तद्वितीयम् । अत्रैव वह्निव्याप्यत्वेन यद्धूमज्ञानं तत्तृतीयम् । इदमेव लिङ्गपरामर्श इत्युच्यते । **अनुमानमिति । व्यापारवत्कारणं करणमिति मते**  
व्याप्तिज्ञानमेवानुमानं लिङ्गपरामर्शो व्यापार इत्यवसेयम् ॥

**लिङ्गं त्रिविधम् । अन्वयव्यतिरेकि केवलान्वयि केवल-**  
**व्यतिरेकि चेति । अन्वयेन व्यतिरेकेण च व्याप्तिमदन्व-**  
**यव्यतिरेकि । यथा वह्नौ साध्यै धूमवत्त्वम् । यत्र धूमस्त-**  
**त्राग्निर्यथा महानसमित्यन्वयव्याप्तिः । यत्र वह्निर्नास्ति**  
**तत्र धूमोऽपि नास्ति यथा हृद इति व्यतिरेकव्याप्तिः ॥**

(न्या०) अन्वयेनेति । व्यापकसामानाधिकरण्यरूपव्याप्ति-  
मानित्यर्थः । व्यतिरेकेणेति । व्यतिरेको नामाभावः । तथा  
च साध्याभावहेत्वभावयोर्व्याप्तिर्व्यतिरेकव्याप्तिः । इयं च व्या-  
प्तिर्यत्र यत्र वह्न्यभावस्तत्र तत्र धूमाभाव इति । यत्रपदवी-  
प्सया वह्न्यभाववति यावति धूमाभावग्रहणे यावत्पदस्य व्याप-  
कत्वपरतया धूमाभावे वह्न्यभावव्यापकत्वं लभ्यते । एवं च व-  
ह्न्यभावनिष्ठव्याप्यत्वस्य स्वाश्रयीभूतवह्न्यभावव्यापकीभूताभाव-  
प्रतियोगित्वसंबन्धेन धूमनिष्ठतया गृहीतव्यतिरेकव्याप्तिमत्त्वेन  
व्यतिरेकित्वेन धूमव्यापकवह्निसामानाधिकरण्यरूपान्वयव्याप्तिम-  
त्त्वेनान्वयित्वेन च गृह्यते । व्यतिरेकपरामर्शस्तु वह्न्यभावव्या-  
पकीभूताभावप्रतियोगिधूमवान्पर्वत इत्याकारकः ॥

(प०) अन्वयव्यतिरेकिणो लक्षणमाह—अन्वयेति । तृतीयायाः प्रयोज्यत्व-  
मर्थः । साध्यसाधनयोः साहचर्यमन्वयः । तदभावयोः साहचर्यं व्यतिरेकः । तथा  
चान्वयप्रयोज्यव्याप्तिमद्व्यतिरेकप्रयोज्यव्याप्तिमदन्वयव्यतिरेकीत्यर्थः । केवलव्यति-  
रेकिन्यतिव्याप्तिवारणाय अन्वयेनेति । केवलान्वयिणि व्यभिचारवारणाय व्यतिरे-



केणेति । तथा चान्वयव्याप्तिरुपदर्शितैव । व्यतिरेकव्याप्तिश्च साध्याभावव्यापकीभू-  
ताभावप्रतियोगित्वमित्यर्थः । तदुक्तं—व्याप्यव्यापकभावो हि भावयोर्यादृगिष्यते  
तयोरभावयोस्तस्माद्विपरीतः प्रतीयते ॥ अन्वये साधनं व्याप्यं साध्यं व्यापक-  
मिष्यते । साध्याभावोऽन्यथा व्याप्यो व्यापकः साधनात्यय इति ॥

अन्वयमात्रव्याप्तिकं केवलान्वयि । यथा घटोऽभिधेयः  
प्रमेयत्वात्पटवत् । अत्र प्रमेयत्वाभिधेयत्वयोर्व्यतिरेक-  
व्याप्तिर्नास्ति सर्वस्यापि प्रमेयत्वादभिधेयत्वाच्च ॥

(न्या०) केवलान्वयिनो लक्षणमाह—अन्वयेति । केव-  
लान्वयिसाध्यकत्वं हेतोः केवलान्वयित्वम् । साध्ये केवलान्व-  
यित्वं चात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वम् । तथाच अभावाप्रतियोगि-  
साध्यकत्वं केवलान्वयिहेतोर्लक्षणम् । एतच्च लक्षणं हेतोर्व्यतिरे-  
कित्वेऽपि संगच्छते । साध्यस्य केवलान्वयित्वादेव व्यतिरे-  
कव्याप्तेरभावादन्वयमात्रव्याप्तिकं केवलान्वयीति मूलकारोक्तं  
लक्षणमुपपन्नम् । नचात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वरूपकेवलान्वयित्व-  
माकाशाभावे संयोगाभावे चाव्याप्तमिति वाच्यम् । स्वविरोधि-  
वृत्तिमदत्यन्ताभावाप्रतियोगित्वस्यैव तदर्थत्वात् । एकजातीयसं-  
बन्धेन सर्वत्र विद्यमानत्वं केवलान्वयित्वमिति नव्याः ॥

(प०) केवलान्वयिनो लक्षणमाह—अन्वयेति । अन्वयेनैव व्याप्तिर्यस्मिन्  
स तथा । प्रमेयत्वाभिधेयत्वयोर्व्यतिरेकव्याप्तिं निराकरोति—अत्रेति । अभिधे-  
यत्वसाध्यकानुमान इत्यर्थः । ननु कुतस्तन्निषेधोऽतस्तत्र हेतुमाह—सर्वस्येति ।  
पदार्थमात्रस्येत्यर्थः । तथाच सकलपदाभिधेयत्वस्येश्वरप्रमाविषयत्वस्य चात्यन्ता-  
भावाप्रतियोगित्वरूपकेवलान्वयित्वेन तदभावाप्रसिद्ध्या तद्वदित्यतिरेकव्याप्तिर्न  
संभवत्येवेति भावः ॥

व्यतिरेकमात्रव्याप्तिकं केवलव्यतिरेकि । यथा पृथिवी-  
तरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वात् । यदितरेभ्यो न भिद्यते  
न तद्गन्धवत् । यथा जलम् । न चेयं तथा । तस्मान्न  
तथेति । अत्र यद्गन्धवत् तदितरभिन्नमित्यन्वयदृष्टान्तो  
नास्ति । पृथिवीमात्रस्य पक्षत्वात् ।

(न्या०) केवलव्यतिरेकिणो लक्षणमाह—व्यतिरेकेति ।

१ अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वेऽपीत्यर्थः । २ तेन संयोगाभावस्य स्वाविरोधिसंयोगात्मक-  
स्वात्यन्ताभावप्रतियोगित्वेऽपि आकाशाभावस्य चावृत्त्याकाशरूपस्वात्यन्ताभावप्रतियो-  
गित्वेऽपि न क्षतिरिति भावः ।



अन्वयव्याप्तिशून्यत्वे सति व्यतिरेकव्याप्तिमत्त्वं केवलव्यतिरेकि-  
त्वम् । यथा पृथिवीति । अत्र पृथिवीत्वावच्छिन्नं पक्षः । पृ-  
थिवीतरजलाद्यष्टभेदः साध्यः । गन्धवत्त्वं हेतुः । अत्र यद्गन्ध-  
वत्तदितरभेदवदित्यन्वयदृष्टान्ताभावाद्गन्धव्यापकेतरभेदसामाना-  
धिकरण्यरूपान्वयव्याप्तिग्रहासंभवात् । किं तु यत्र यत्र पृथिवी-  
तरभेदाभावस्तत्र तत्र गन्धाभावो यथा जलादिकमिति व्यतिरे-  
कदृष्टान्ते जलादावितरभेदाभावरूपसाध्याभावव्यापकता गन्धा-  
भावे गृह्यते । इममेवार्थं मनसि निधाय यदितरेभ्यो न भिद्यते  
न तद्गन्धवत् यथा जलमिति ग्रन्थेन मूलकारो व्यतिरेकव्या-  
प्तिमेव प्रदर्शितवान् । एवंप्रकारेण व्यतिरेकव्याप्तिग्रहानन्तरमि-  
तरभेदाभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगिगन्धवती पृथिवीत्याकार-  
कव्यतिरेकिपरामर्शात्पृथिवीत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितेतरभेद-  
त्वावच्छिन्नविधेयताका पृथिवी इतरभेदवतीत्याकारकानुमिति-  
र्जायत इति तत्त्वम् । यथाश्रुतमूलार्थस्तु—यथा जलमिति ।  
जलं इतरभेदाभाववत् इतरभेदाभावव्यापकगन्धाभाववच्च ।  
इत्येवंप्रकारेण गन्धाभावनिरूपिता व्याप्यता इतरभेदाभावे गृह्यत  
इत्यर्थः । न चेयं तथा । इयं=पृथिवी तथा=इतरभेदा-  
भावव्यापकगन्धाभाववती न किं तु तदभावात्मकगन्धवती ।  
तस्मान्न तथेति । तच्छब्देन गन्धाभावाभावरूपस्य गन्धस्य  
परामर्शेन तस्मादिति पञ्चम्यन्तात् गन्धाभावाभाववत्त्वादित्य-  
र्थोपलब्धिः । तथा=इतरभेदाभाववती । न इत्यस्याभावः । तथाच  
इतरभेदाभावाभाववती इतरभेदवतीत्यर्थः ॥

(प०) केवलव्यतिरेकिणो लक्षणमाह—व्यतिरेकेति । व्यतिरेकेणैव व्याप्ति-  
र्यस्मिस्तत्तथा । अन्वयव्यतिरेकिण्यतिव्याप्तिवारणाय मात्रेति । न चेयं तथेति ।  
इयं पृथिवी न तथा न गन्धाभाववतीत्यर्थः ॥ तस्मान्न तथेति । गन्धाभावव-  
त्त्वाभावादितरभेदाभाववती नेत्यर्थः । नन्वत्र किमिति नान्वयव्याप्तिरित्याशङ्क्य  
परिहरति—अत्रेति । इतरभेदसाधकानुमान इत्यर्थः । इदमुपलक्षणम् । जीवत्  
शरीरं सात्मकं प्राणादिमत्त्वात् । यन्नैवम् तन्नैवम् । यथा घटः । प्रत्यक्षादिकं  
प्रमाणमिति व्यवहर्तव्यं प्रमाकरणत्वात् । यन्नैवं तन्नैवम् । यथा प्रत्यक्षाभासः ।  
विवादास्पदम् आकाशमिति व्यवहर्तव्यं शब्दवत्त्वादित्यादिकमपि केवलव्यतिरे-  
कीति द्रष्टव्यम् ॥

संदिग्धसाध्यवान् पक्षः । यथा धूमवत्त्वे हेतौ पर्वतः ॥

(न्या) पक्षलक्षणमाह—संदिग्धेति । साध्यप्रकारकसं-  
देहविशेष्यत्वं पक्षत्वम् । इदं च लक्षणमनुमितेः पूर्वं साध्यसं-



देहो नियमेन जायत इत्यभिप्रायेण प्राचीनैः कृतम् । गगनवि-  
शेष्यकमेघप्रकारकसंदेहाभावदशायामपि गृहमध्यस्थपुरुषस्य घ-  
नगर्जितश्रवणेन गगनं मेघवदित्याकारिकाया गगनत्वावच्छिन्नोद्दे-  
श्यतानिरूपितमेघत्वावच्छिन्नविधेयताकाया अनुमितेर्दर्शनात्प्रा-  
चीनलक्षणं विहाय नवीनैरनुमित्युद्देश्यत्वं पक्षत्वमिति स्थिरी-  
कृतम् ॥

(प०) अथ पृथिवीमात्रस्य पक्षत्वादित्यत्र किं नाम पक्षतेत्यपेक्षायां तां नि-  
र्वक्ति—संदिग्धेति । सपक्षवारणाय संदिग्धेति ॥

निश्चितसाध्यवान् सपक्षः । यथा तत्रैव महानसम् ॥

(न्या०) सपक्षलक्षणमाह—निश्चितेति । साध्यप्रकारकनि-  
श्चयविशेष्यत्वं सपक्षत्वम् । निश्चयश्च महानसं वह्निमदित्या  
कारकः ॥

(प०) निश्चितेति । पक्षेऽतिव्याप्तिवारणाय निश्चितेति । तत्रैवेति । धूम-  
वत्त्वे हेतावेवेत्यर्थः ॥

निश्चितसाध्याभाववान् विपक्षः । यथा तत्रैव महाहृदः ॥

(न्या०) विपक्षलक्षणमाह—निश्चितसाध्याभावेति ।  
साध्याभावप्रकारकनिश्चयविशेष्यत्वं विपक्षत्वम् । निश्चयश्च हृदो  
वह्न्यभाववानित्याकारकः ॥

(प०) निश्चितेति । सपक्षेऽतिव्याप्तिवारणाय साध्येति । पक्षेऽतिव्याप्तिवा-  
रणाय निश्चितेति । तत्रैव धूमवत्त्व एव ॥

सव्यभिचारविरुद्धसत्प्रतिपक्षासिद्धिवाधिताः पञ्च हेत्वा-  
भासाः ॥

(न्या०) एवं सद्धेतून्निरूप्य हेत्वाभासान्निरूपयति—सव्य-  
भिचारेति । हेतुवदाभासन्त इति हेत्वाभासाः । दुष्टहेतव इ-  
त्यर्थः । दोषाश्च व्यभिचारविरोधसत्प्रतिपक्षासिद्धिवाधाः । एत-  
द्विशिष्टा हेतवो दुष्टहेतव इत्यर्थः । यद्विषयत्वेन ज्ञानस्यानुमि-  
तितत्करणान्यतरप्रतिबन्धकत्वं तत्त्वं दोषसामान्यस्य लक्षणम् ।  
हेतौ दोषज्ञाने सत्यनुमितिप्रतिबन्धो जायते व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धो  
वा । अतो वादिनिग्रहाय वादिनोद्भाविता हेतौ दोषोद्भावनार्थं  
दुष्टहेतुनिरूपणमित्यर्थः । पर्वतो वह्निमान्, प्रमेयत्वादित्यत्र प्रमे-  
यत्वहेतौ वह्न्यभाववद्वृत्तित्वरूपव्यभिचारे ज्ञाते वह्न्यभाववद्वृ-  
त्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धः फलम् ॥

(प०) हेतून्निरूप्य प्रसङ्गाद्धेतवाभासानाह—सव्यभिचारेति । अत्रेदं बो-  
ध्यम्—अन्वयव्यतिरेकि तु पञ्चरूपोपपन्नं स्वसाध्यं साधयितुं क्षमते तानि कानीति



चेच्छ्रूयताम् । पक्षधर्मत्वं सपक्षसत्त्वं विपक्षाद्यावृत्तिरबाधितविषयत्वमसत्प्र-  
तिपक्षत्वं चेति । अबाधितः साध्यरूपो विषयो यस्य तत्तथोक्तम् । तस्य भावस्त-  
त्वम् । एवं साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं यस्य स सत्प्रतिपक्ष इत्युच्यते । स नास्ति  
यस्य सोऽसत्प्रतिपक्षः । तस्य भावस्तत्त्वमिति बोध्यम् । केवलान्वयि तु चतूरूपो-  
पपन्नमेव स्वसाध्यं साधयितुं क्षमते तस्य विपक्षविपर्ययेण तद्यावृत्तिविपर्ययात् ।  
केवलव्यतिरेक्यपि तथा तस्य सपक्षविपर्ययेण तत्सत्त्वविपर्ययादिति । उपद-  
र्शितरूपाणां मध्ये कतिपयरूपोपपन्नत्वात् । हेतुवदाभासन्ते इति हेत्वाभासाः । तत्त्वं  
चानुमितितत्करणान्यतरप्रतिबन्धकयथार्थज्ञानविषयत्वम् । बाधस्थले वह्निरनुष्ण  
इत्यनुमितिप्रतिबन्धकं यज्ज्ञानमुष्णत्ववद्ब्रह्मवनुष्णत्वसाधकं द्रव्यत्वमित्याकारकं  
तद्विषयत्वस्य विषयतासंबन्धेन द्रव्यत्वरूपहेत्वाभासे सत्त्वालक्षणसमन्वयः । सद्धे-  
तुवारणाय यथार्थेति । घटादिवारणाय अनुमितितत्करणप्रतिबन्धकेति । व्यभि-  
चारिणि अव्याप्तिवारणाय तत्करणान्यतरेति ॥

**सव्यभिचारोऽनैकान्तिकः । स त्रिविधः साधारणासा-  
धारणानुपसंहारिभेदात् । तत्र साध्याभाववद्बृत्तिः सा-  
धारणोऽनैकान्तिकः । यथा पर्वतो वह्निमान् प्रमेयत्वा-  
दिति । प्रमेयत्वस्य वह्नयभाववृत्तिरहो विद्यमानत्वात् ॥**

(प०) तत्रेति । साधारणादित्रितयसाध्य इत्यर्थः । अथ विरुद्धेऽतिप्रसक्तिरिति  
मा स्म दृष्यः सपक्षवृत्तित्वस्यापि निवेशात् । अथैवमपि स्वरूपासिद्धे दूषणं जाग-  
र्तीति मा वह गर्वं पक्षवृत्तित्वस्यापि तथात्वात् ॥

**सर्वसपक्षविपक्षव्यावृत्तः पक्षमात्रवृत्तिरसाधारणः । यथा  
शब्दो नित्यः शब्दत्वादिति । शब्दत्वं सर्वेभ्यो नित्ये  
भ्योऽनित्येभ्यश्च व्यावृत्तं शब्दमात्रवृत्ति ॥**

(न्या०) असाधारण इति । सर्वसपक्षव्यावृत्तत्वं नि-  
श्चितसाध्यवद्वृत्तित्वम् । साध्यवद्वृत्तित्वं च साध्यासामाना-  
धिकरण्यम् । हेतौ साध्यासामानाधिकरण्ये निश्चिते साध्यसामा-  
नाधिकरण्यरूपव्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धः फलम् ॥

(प०) पक्षमात्रेति । सर्वे ये सपक्षा विपक्षास्तेभ्यो व्यावर्तत इति सपक्ष-  
विपक्षव्यावृत्तः । केवलव्यतिरेकिवारणाय तद्विन्न इत्यपि देयम् ॥

**अन्वयव्यतिरेकदृष्टान्तरहितोऽनुपसंहारी । यथा सर्व-  
मनित्यं प्रमेयत्वादिति । अत्र सर्वस्यापि पक्षत्वादृष्टान्तो  
नास्ति ॥**

(न्या०) अनुपसंहारिणं लक्षयति—अन्वयेति । उभयत्र



दृष्टान्ताभावादन्यव्याप्तिज्ञानव्यतिरेकव्याप्तिज्ञानोभयसामग्री नास्तीत्यर्थः । सर्वस्यैव पक्षत्वात्पक्षातिरिक्ताप्रसिद्धेरिति भावः ॥

(प०) अन्वयेति । केवलान्वयिन्यतिव्याप्तिवारणाय अन्वयेति । केवलव्यतिरेकिण्यतिव्याप्तिवारणाय व्यतिरेकेति । अत्रेति । उपदर्शितानुमान इत्यर्थः ॥

साध्याभावव्याप्तो हेतुर्विरुद्धः । यथा शब्दो नित्यः कृतकत्वादिति । कृतकत्वं हि नित्यत्वाभावेनानित्यत्वेन व्याप्तम् ॥

(न्या०) विरुद्धं लक्षयति—साध्याभावव्याप्त इति ॥

साध्याभावव्याप्तिः साध्याभावनिरूपितव्यतिरेकव्याप्तिः साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वम् । तथाच पक्षविशेष्यकसाध्याभावव्याप्यहेतुप्रकारकज्ञानात् पक्षविशेष्यकसाध्यप्रकारकानुमितिप्रतिबन्धः फलम् । एवं सत्प्रतिपक्षेऽपि । विरुद्धसत्प्रतिपक्षयोर्विशेषस्तु विरुद्धहेतोरकत्वेन सत्प्रतिपक्षहेतोर्द्वित्वेन च ज्ञातव्यः । सत्प्रतिपक्षे द्वौ हेतू विरुद्ध एको हेतुरिति यावत् । साध्याभावसाधकहेतुः साध्यसाधकत्वेनोपन्यस्त इत्यसामर्थ्यसूचनमपि ॥

(प०) विरुद्धं लक्षयति—साध्येति । सिद्धेतिवारणाय साध्याभावव्याप्त इति । सत्प्रतिपक्षवारणाय सत्प्रतिपक्षभिन्न इत्यपि बोध्यम् । कृतेति । कार्यत्वादित्यर्थः । कृतकत्वमिति । अनित्यत्वेन व्याप्तमिति । यद्यत्कृतकं तत्तदनित्यमिति व्याप्तिर्भवत्येव तथेति भावः ॥

साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं यस्य स सत्प्रतिपक्षः । यथा शब्दो नित्यः श्रावणत्वाच्छब्दत्ववत् । शब्दोऽनित्यः कार्यत्वाद्धटवत् ॥

(प०) सत्प्रतिपक्षं लक्षयति—साध्येति । यस्य हेतोः साध्याभावसाधकं साध्याभावस्यानुमापकं हेत्वन्तरं प्रतिपक्षो हेतुः विद्यते स हेतुः सत्प्रतिपक्ष इत्यर्थः । अयमेव प्रकरणसम इत्युच्यते । विरुद्धवारणाय हेत्वन्तरं यस्येति । बह्यादिवारणाय साध्याभावेति ॥

असिद्धस्त्रिविधः । आश्रयासिद्धः स्वरूपासिद्धो व्याप्यत्वासिद्धश्चेति ॥

(प०) असिद्धं विभजते—असिद्ध इति । आश्रयासिद्धाद्यन्यतमत्वमसिद्धत्वम् ॥

आश्रयासिद्धो यथा । गगनारविन्दं सुरभि, अरविन्दत्वात् । सरोजारविन्दवत् । अत्र गगनारविन्दमाश्रयः स च नास्त्येव ॥



(न्या०) आश्रयासिद्ध इति । आश्रयासिद्धिर्नाम पक्षता-  
वच्छेदकविशिष्टपक्षाप्रसिद्धिः । यथेति । अत्रारविन्दे गगनी-  
यत्वाभावे निश्चिते गगनीयत्वविशिष्टारविन्दे सौरभ्यानुमितिप्र-  
तिबन्धः फलम् ॥

(प०) आश्रयासिद्धत्वं च पक्षतावच्छेदकाभाववत्पक्षकत्वम् । भवति हि अरवि-  
न्दत्वे गगनीयत्वरूपपक्षतावच्छेदकाभाववत्पक्षकत्वम्, अरविन्दरूपपक्षे गगनीयत्व-  
विरहात् । ननु किमरविन्दे गगनीयत्वविरहोऽत आह—अत्रेति । उपदर्शि-  
तानुमान इत्यर्थः ॥

स्वरूपासिद्धो यथा । शब्दो गुणश्चाक्षुषत्वात्, रूपवत् ।

अत्र चाक्षुषत्वं शब्दे नास्ति शब्दस्य श्रावणत्वात् ॥

(न्या०) आश्रयासिद्ध इति । स्वरूपासिद्धिर्नाम पक्षे हे-  
त्वभावः । तथाच हेत्वभावविशिष्टपक्षज्ञानात्पक्षविशेष्यकहेतुप्र-  
कारकपरामर्शानुपपत्त्या परामर्शप्रतिबन्धः फलम् ॥

(प०) पक्षे हेत्वभावः स्वरूपासिद्धिः । सद्धेतव्यभावेऽतिव्याप्तिवारणाय पक्षे इति ।  
घटाद्यभाववारणाय हेत्विति । सोऽयं स्वरूपासिद्धः शुद्धासिद्धभागासिद्धविशेषणा-  
सिद्धविशेष्यासिद्धभेदेन चतुर्विधः । तत्राद्यस्तुपदर्शित एव । द्वितीयो यथा—उद्ध-  
तरूपादिचतुष्टयं गुणः, रूपत्वादित्यत्र रूपत्वेहेतोः पक्षैकदेशावृत्तित्वेन तस्य भागे  
स्वरूपासिद्धत्वम् । तृतीयो यथा—वायुः प्रत्यक्षः, रूपवत्त्वे सति स्पर्शवत्त्वादित्यत्र  
रूपवत्त्वविशेषणस्य वायाववृत्तेस्तद्विशिष्टस्पर्शवत्त्वस्यापि तथात्वेन तस्य स्वरूपा-  
सिद्धत्वं निर्वहति विशेषणाभावे विशिष्टस्याप्यभावात् । तुरीयो यथा—अत्रैव  
विशेषणविशेष्यवैपरीत्येन हेतुः । तस्य स्वरूपासिद्धत्वं तु विशेष्याभावप्रयुक्तविशि-  
ष्टाभावादिति बोध्यम् ॥

सोपाधिको हेतुर्व्याप्यत्वासिद्धः । साध्यव्यापकत्वे सति  
साधनाव्यापकत्वमुपाधिः । साध्यसमानाधिकरणात्य-  
न्ताभावाप्रतियोगित्वं साध्यव्यापकत्वम् । साधनवन्नि-  
ष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं साधनाव्यापकत्वम् । पर्व-  
तो धूमवान् वह्निमत्त्वादित्यत्रार्द्धेन्धनसंयोग उपाधिः ।  
यत्र धूमस्तत्रार्द्धेन्धनसंयोग इति साध्यव्यापकता । यत्र  
वह्निस्तत्रार्द्धेन्धनसंयोगो नास्ति अयोगोलके आर्द्धेन्धन-  
संयोगाभावादिति साधनाव्यापकता । एवं साध्यव्या-  
पकत्वे सति साधनाव्यापकत्वादार्द्धेन्धनसंयोग उ-  
पाधिः । सोपाधिकत्वाद्वह्निमत्त्वं व्याप्यत्वासिद्धम् ॥



(न्या०) व्याप्यत्वासिद्ध इति । प्रकृते धूमव्यापकत्वमा-  
द्रैन्धनसंयोगे गृहीतं चेद्धूमे आद्रैन्धनसंयोगव्याप्यत्वं गृहीतम् ।  
एवं वह्नेरव्यापकत्वमाद्रैन्धनसंयोगे गृहीतं चेद्बहौ तदव्याप्यत्वं  
गृहीतम् । तदेव व्यभिचरितत्वम् । तथा चोपाधिव्यभिचरितत्वं  
साधने गृहीतं चेदुपाधिभूताद्रैन्धनसंयोगव्याप्यधूमव्यभिचारित्वं  
गृहीतमेव । अनुमानप्रकारश्च पूर्वानुमानहेतुं पक्षीकृत्य वह्निधू-  
मव्यभिचारी धूमव्यापकाद्रैन्धनसंयोगव्यभिचारित्वात् घटत्वा  
दिवत् । यो यत्साध्यव्यापकव्यभिचारी स सर्वोऽपि साध्यव्य-  
भिचारीति । एवंप्रकारेण प्रकृतानुमानहेतुभूते पक्षे साध्यव्य-  
भिचारोत्थापकतया दूषकत्वमुपाधेः फलम् । तथाच धूमाभा-  
ववद्भूतित्वरूपधूमव्यभिचारे गृहीते वह्नौ धूमाभाववदवृत्तत्वरूप-  
व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धः फलम् ॥

(प०) व्याप्यत्वासिद्धं निरूपयति—सोपाधिक इति । ननु कोऽयमुपाधि-  
रत आह—साध्येति । साधनाव्यापक उपाधिरित्युक्ते शब्दोऽनित्यः कृतकत्वा-  
दित्यत्र सामान्यवत्त्वे सत्यस्मदादिबाह्येन्द्रियग्रहणार्हत्वमप्युपाधिः स्यात्तदर्थं साध्य-  
व्यापकत्वमुक्तम् । तावत्युक्ते सामान्यवद्भावादिनाऽनित्यत्वसाधने कृतकत्वमुपाधिः  
स्यात्तदर्थं साधनाव्यापकत्वमुक्तम् । उपाधिभेदमादायासंभववारणाय व्यापकत्वश-  
रीरेऽप्यत्यन्तपदमादेयम् । साधनभेदमादाय साधनस्योपाधित्ववारणाय व्यापक-  
शरीरेऽप्यत्यन्तपदमावश्यकं देयम् । सोऽयमुपाधित्रिविधः—केवलसाध्यव्यापकः  
पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकः साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकश्चेति । तत्राय उपद-  
र्शितः । एवं कलन्तर्वर्तिनी हिंसा अधर्मजनिका हिंसात्वात्, क्रतुबाह्यहिंसावदित्यत्र  
निषिद्धत्वमुपाधिः । तस्य यत्राधर्मजनकत्वं तत्र निषिद्धत्वमिति साध्यव्यापकता ।  
यत्र हिंसालं तत्र न निषिद्धत्वमिति निषिद्धत्वमुपाधिः साधनाव्यापकः । क्रतु-  
हिंसायां निषिद्धत्वस्याभावात् । ‘न हिंस्यात्सर्वा भूतानि’ इति सामान्यवाक्यतः  
‘पशुना यजेत’ इत्यादिविशेषवाक्यस्य बलीयस्त्वात् । अतो हिंसालं नाधर्मजनकत्वे  
प्रयोजकमपि तु निषिद्धत्वमेवेत्यादिकमपि द्रष्टव्यम् । द्वितीयो यथा—वायुः प्रत्यक्षः  
प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वादित्यत्रोद्भूतरूपवत्त्वमुपाधिः । तस्य यत्र प्रत्यक्षत्वं तत्रोद्भूतरू-  
पवत्त्वमिति न केवलसाध्यव्यापकत्वं रूपे व्यभिचारात् । किंतु द्व्यललक्षणो यः  
पक्षधर्मस्तदवच्छिन्नबहिःप्रत्यक्षत्वं यत्र तत्रोद्भूतरूपवत्त्वमिति पक्षधर्मावच्छिन्नसा-  
ध्यव्यापकत्वमेव । आत्मनि व्यभिचारवारणाय बहिःपदम् । यत्र प्रत्यक्षस्पर्शाश्र-  
यत्वं तत्र नोद्भूतरूपवत्त्वमिति साधनाव्यापकत्वं च वायवुद्भूतरूपविरहात् ।  
तृतीयो यथा—प्रागभावो विनाशी जन्यत्वादित्यत्र भावलमुपाधिः । तस्य यत्र  
विनाशित्वं तत्र भावत्वमिति न केवलसाध्यव्यापकत्वं प्रागभावे भावत्वविरहात् ।  
किं तु जन्यत्वरूपसाधनावच्छिन्नविनाशित्वं यत्र तत्र भावत्वमिति साधनावच्छि-  
न्नसाध्यव्यापकत्वमेव । यत्र जन्यत्वं तत्र न भावत्वमिति साधनाव्यापकत्वं च



ध्वंसे भावत्वविरहात् । एवं स श्यामो मित्रातनयत्वादित्यत्र शाकपाकजन्यत्वमुपाधिः । श्यामत्वस्य नीलघटेऽपि सत्त्वान्न केवलसाध्यव्यापकत्वं किं तु साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वमेव । अष्टमे पुत्रे शाकपाकजन्यत्वविरहेण साधनाव्यापकत्वं चेत्यादिकमपि द्रष्टव्यम् ॥

यस्य साध्याभावः प्रमाणान्तरेण निश्चितः स बाधितः । यथा वह्निरनुष्णो द्रव्यत्वादिति । अत्रानुष्णत्वं साध्यं तदभाव उष्णत्वं स्पर्शानप्रत्यक्षेण गृह्यते इति बाधितत्वम् ॥

(न्या०) यस्येति । यस्य हेतोः साध्यस्याभावः साध्याभावः । स च प्रमाणान्तरेण प्रत्यक्षप्रमाणेन निश्चितः स बाधित इत्यर्थः । तथाच प्रात्यक्षिकसाध्यबाधनिश्चये जाते साध्यानुमितिप्रतिबन्धः फलम् । बाधितसाध्यकत्वाद्बाधितहेतुरित्युच्यते ॥ इति न्यायबोधिण्यामनुमानपरिच्छेदः ॥

(प०) यस्येति । सद्धेतुवारणाय प्रमाणान्तरेणेति । घटादिवारणाय साध्येति । इति पदकृत्यकेऽनुमानखण्डः ॥

उपमितिकरणमुपमानम् । संज्ञासंज्ञिसंबन्धज्ञानमुपमितिः । तत्करणं सादृश्यज्ञानम् । तथाहि कश्चिद्रव्यपदार्थमजानन्कुतश्चिदारण्यकपुरुषाद्गोसदृशो गवय इति श्रुत्वा वनं गतो वाक्यार्थं स्मरन्गोसदृशं पिण्डं पश्यति । तदनन्तरमसौ गवयशब्दवाच्य इत्युपमितिरूपयते ॥

(न्या०) उपमानं लक्षयति—उपमितिकरणमिति । उपमितिं लक्षयति—संज्ञासंज्ञीति । संज्ञा नाम पदम् । संज्ञी अर्थः । तयोः संबन्धः शक्तिः । तथाच पदपदार्थसंबन्धज्ञानमुपमितिरीत्यर्थः । उपमानं नामातिदेशवाक्यार्थज्ञानम् । अतिदेशवाक्यार्थस्मरणं व्यापारः । उपमितिः फलम् । गोसदृशो गवयपदवाच्य इत्याकारकवाक्याद्गोसादृश्यावच्छिन्नविशेष्यकगवयपदवाच्यत्वप्रकारकं यज्ज्ञानं जायते तदेव करणम् ॥ इति न्यायबोधिण्यामुपमानपरिच्छेदः ॥

(प०) अवसरसंगतिमभिप्रेत्यानुमानानन्तरमुपमानं निरूपयति—उपमितीति उपमितेः करणमुपमानमित्यर्थः । कुठारादिवारणाय मितिीति । प्रत्यक्षादिवारणाय उपेति । संज्ञासंज्ञीति । अनुमित्यादिवारणाय संबन्धेति । संयोगादिवारणाय संज्ञासंज्ञीति । असौ गवयपदवाच्य इति । अभिप्रेतो गवयो गवयपदवाच्य इत्यर्थः । तेन गवयान्तरे शक्तिग्रहाभावप्रसंग इति दूषणमपास्तम् । तथाच गोसा-



दृश्यविशिष्टपिण्डज्ञानं करणम् । अतिदेशवाक्यार्थस्मरणमवान्तरव्यापारः । उप-  
मितिः फलमिति सारम् । तच्चोपमानं त्रिविधं सादृश्यविशिष्टपिण्डज्ञानमसाधारण-  
धर्मविशिष्टपिण्डज्ञानं वैधर्म्यविशिष्टपिण्डज्ञानं च । तत्राद्यमुक्तमेव । द्वितीयं  
यथा—खड्गमृगः कीदृगिति पृष्ठे नासिकालसदेकशृङ्गोऽनतिक्रान्तगजाकृतिश्चेति  
तज्ज्ञातृभ्यः श्रुत्वा कालान्तरे तादृशं पिण्डं पश्यन्नतिदेशवाक्यार्थं स्मरति तदन-  
न्तरं खड्गमृगः खड्गमृगपदवाच्य इत्युपमितिरुपपद्यते । अत्र नासिकालसदेकशृङ्ग  
एवासाधारणधर्मः । तृतीयं यथा—उष्ट्रः कीदृगिति पृष्ठे अश्वादिवदसमानपृष्ठो न  
ह्रस्वग्रीवशरीरश्चेति आप्तोक्ते कालान्तरे तत्पिण्डदर्शनाद्वैधर्म्यविशिष्टपिण्डज्ञानं  
ततोऽतिदेशवाक्यार्थस्मरणं तत उष्ट्र उष्ट्रपदवाच्य इत्युपमितिरुपपद्यते ॥ इति  
पदकृत्यके उपमानखण्डः ॥

आप्तवाक्यं शब्दः । आप्तस्तु यथार्थवक्ता । वाक्यं पद-  
समूहः । यथा गामानयेति । शक्तं पदम् । अस्मात्पदा-  
दयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वरसंकेतः शक्तिः ॥

(न्या०) शब्दं लक्षयति—आप्तेति । आप्तोच्चरितत्वे सति  
वाक्यत्वं शब्दस्य लक्षणम् । प्रमाणशब्दत्वं लक्ष्यतावच्छेदकम् ।  
वाक्यत्वमात्रोक्तावनाप्तोच्चरितवाक्येऽतिव्याप्तिरत आप्तोच्चरित-  
त्वनिवेशः । तावन्मात्रोक्तौ जैवगडदशादावतिव्याप्तिरतो वाक्य-  
त्वम् । आप्तत्वं च प्रयोगहेतुभूतयथार्थज्ञानवत्त्वम् । तथा च  
प्रयोगहेतुभूतयथार्थज्ञानजन्यशब्दत्वमिति पर्यवसन्नोऽर्थः ।  
वस्तुतस्तु पदज्ञानं करणम् । वृत्तिज्ञानसहकृतपदज्ञानजन्यपदार्थो-  
पस्थितिर्व्यापारः । वाक्यार्थज्ञानं शाब्दबोधः फलम् । वृत्तिर्नाम  
शक्तिलक्षणान्यतररूपा । शक्तिर्नाम घटादिविशेष्यकघटादिपद-  
जन्यबोधविषयत्वप्रकारक ईश्वरसंकेतः । ईश्वरसंकेतो नाम  
ईश्वरेच्छा । सैव शक्तिरित्यर्थः । शक्तिनिरूपकत्वमेव पदे  
शक्तत्वम् । विषयतासंबन्धेन शक्त्याश्रयत्वं शक्यत्वम् ।  
शक्यसंबन्धो लक्षणा । सा द्विविधा गौणी शुद्धा चेति ।  
गौणी नाम सादृश्यविशिष्टे लक्षणा । यथा सिंहो माण-  
वक इत्यादौ सिंहपदस्य सिंहसादृश्यविशिष्टे लक्षणा । शुद्धा  
त्रिविधा । जहल्लक्षणा अजहल्लक्षणा जहदजहल्लक्षणा चेति ।  
लक्ष्यतावच्छेदकरूपेण लक्ष्यमात्रबोधप्रयोजिका लक्षणा जहल्ल-  
क्षणा । यथा गङ्गायां घोष इत्यत्र गङ्गापदवाच्यप्रवाहसंबन्धस्य  
तीरे सत्त्वात्तादृशशक्यसंबन्धरूपलक्षणज्ञानाद्गङ्गापदात्तीरोपस्थि-  
तिः । लक्ष्यतावच्छेदकरूपेण लक्ष्यशक्योभयबोधप्रयोजिका ल-  
क्षणा अजहल्लक्षणा । यथा काकेभ्यो दधि रक्ष्यतामित्यत्र काक-  
पदस्य दध्युपघातके लक्षणा । लक्ष्यतावच्छेदकं दध्युपघातक-



त्वम् । तेन रूपेण दध्युपघातकानां सर्वेषां काकविडालकुक्कुट-  
सारमेयादीनां शक्यलक्ष्याणां सर्वेषां बोधात् । शक्यतावच्छे-  
दकपरित्यागेन व्यक्तिमात्रबोधप्रयोजिका लक्षणा जहदजहल्ल-  
क्षणा । यथा तत्त्वमसीत्यत्र सर्वज्ञत्वकिञ्चिज्ज्ञत्वपरित्यागेन  
व्यक्तिमात्रबोधनात् इयं च जीवब्रह्मणोरैक्यं वदतां वेदान्तिनां  
मते ॥

(प०) अवसरसंगतिमभिप्रेत्योपमानानन्तरं शब्दं निरूपयति—आप्तेति ।  
शब्द इति । शब्दः प्रमाणमित्यर्थः । भ्रान्तविप्रलम्भकयोर्वाक्यस्य शब्दप्रमाण-  
त्ववारणाय आप्तेति । ननु कोऽयमाप्त इत्यत आह—आप्तस्त्विति । यथार्थ-  
वक्ता यथाभूताबाधितार्थोपदेष्टा । वाक्यं लक्षयति—वाक्यमिति । घटादिस-  
मूहवारणाय पदेति । शक्तमिति । निरूपकतासंबन्धेन शक्तिविशिष्टमित्यर्थः ।  
अस्मादिति । घटपदाद्वटरूपोऽर्थो बोद्धव्य इतीश्वरेच्छैव शक्तिरित्यर्थः । अर्थ-  
स्मृत्यनुकूलपदपदार्थसंबन्धत्वं तल्लक्षणम् । शक्तिरिव लक्षणापि पदवृत्तिः । अथ  
केयं लक्षणा । शक्यसंबन्धो लक्षणा । सा च त्रिधा । जहत्-अजहत्-जहदजहद्वे-  
दात् । वर्तते च गङ्गायां घोष इत्यत्र गङ्गापदशक्यप्रवाहसंबन्धस्तीरे । लक्षणाबीजं  
च तात्पर्यानुपपत्तिः । अत एव प्रवाहे घोषतात्पर्यानुपपत्तेस्तीरे लक्षणा सेत्स्यति ।  
छत्रिणो यान्तीत्यादौ द्वितीया । सोऽयमश्व इत्यादौ तृतीया ॥

आकाङ्क्षा योग्यता संनिधिश्च वाक्यार्थज्ञाने हेतुः ।

पदस्य पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्तान्वयाननुभावकत्वमाका-  
ङ्क्षा । अर्थाबाधो योग्यता । पदानामविलम्बेनोच्चारणं  
संनिधिः । तथाच आकाङ्क्षादिरहितं वाक्यमप्रमा-  
णम् । यथा गौरश्वः पुरुषो हस्तीति न प्रमाणम् आ-  
काङ्क्षाविरहात् । वह्निना सिञ्चेदिति न प्रमाणं योग्य-  
ताविरहात् । प्रहरे प्रहरेऽसहोच्चारितानि गामानयेत्या-  
दिपदानि न प्रमाणं सांनिध्याभावात् ॥

(न्या०) आकाङ्क्षां लक्षयति—पदस्येति । यत्पदविशे-  
ष्यकाव्यवहितोत्तरत्वादिसंबन्धेन यत्पदप्रकारकज्ञानव्यतिरेकप्र-  
युक्तो यादृशशब्दबोधाभावस्तादृशशब्दबोधे तत्पदे तत्पदवत्व-  
माकाङ्क्षा । यथा घटमित्यादिस्थलेऽव्यवहितोत्तरत्वादिसंबन्धे-  
नाम् पदं घटपदवदित्याकारकाम्पदविशेष्यकघटपदप्रकारकज्ञान-  
सत्त्वे घटीयं कर्मत्वमिति बोधो जायते । अम् घट इति विपरी-  
तोच्चारणे तु तादृशज्ञानाभावात्तादृशशब्दबोधो न जायते ।  
अतस्तादृशकाङ्क्षाज्ञानं शब्दबोधे कारणम् । अर्थाबाध



इति । बाधाभावो योग्यतेत्यर्थः । अग्निना सिञ्चेदित्यत्र  
सेककरणत्वस्य जलादिधर्मस्य बहौ बाधनिश्चयसत्त्वान्न तादृश-  
वाक्याच्छाब्दबोधः । संनिधिं निरूपयति—पदानामिति ।  
असहोच्चारितानि विलम्बोच्चारितानि ॥

(प०) असंभववारणाय पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्त इति । पुनरसंभववारणाय  
पदान्तरेति अर्थेति । आकाङ्क्षावारणाय अर्थेति । पदानामिति । असहोच्चारि-  
तेष्वतिव्याप्तिवारणाय अविलम्बेनेति । आकाङ्क्षावारणाय पदानामिति(?) । आका-  
ङ्क्षादिशून्यवाक्यस्यात्र प्रमाणत्वं निषेधयति—तथा चेति । आकाङ्क्षादिकं शाब्द-  
हेतुरित्युक्ते चेत्यर्थः । अनाकाङ्क्षाद्युदाहरणं दर्शयति—यथेति ॥

वाक्यं द्विविधम् । वैदिकं लौकिकं च । वैदिकमीश्व-  
रोक्तत्वात्सर्वमेव प्रमाणम् । लौकिकं त्वाप्तोक्तं प्रमाणम् ।  
अन्यदप्रमाणम् ॥

(न्या०) वैदिकमिति । वेदवाक्यमित्यर्थः । इदमुपलक्ष-  
णम् । वेदमूलकस्मृत्यादीन्यपि ग्राह्याणि । लौकिकं त्विति ।  
वेदवाक्यभिन्नमित्यर्थः । आप्तत्वं च प्रयोगहेतुभूतयथार्थज्ञानव-  
त्त्वम् ॥ इति न्यायबोधिण्यां शब्दपरिच्छेदः ॥

वाक्यार्थज्ञानं शाब्दज्ञानम् । तत्करणं शब्दः ॥

(प०) नन्वेतावता शाब्दसामग्री प्रपञ्चिता । प्रमाविभाजकवाक्ये शाब्दस्याप्यु-  
द्दिष्टत्वेन तत्कुतो न प्रदर्शितमित्यत आह—वाक्यार्थेति । शाब्दत्वं च शब्दा-  
त्प्रत्येमीत्यनुभवसिद्धा जातिः । शाब्दबोधकमो यथा—चैत्रो ग्रामं गच्छतीत्यत्र  
ग्रामकर्मकगमनानुकूलवर्तमानकृतिमांश्चैत्र इति शाब्दबोधः । द्वितीयायाः कर्मत्व-  
मर्थः । धातोर्गमनम् । अनुकूलत्वं च संसर्गमर्यादया भासते । लटो वर्तमानत्वमा-  
ख्यातस्य कृतिः । तत्संबन्धः संसर्गमर्यादया भासते रथो गच्छतीत्यत्र गमना-  
नुकूलव्यापारवान् रथ इति शाब्दबोधः । स्नात्वा गच्छतीत्यत्र गमनप्रागभावाव-  
च्छिन्नकालीनस्नानकर्ता गमनानुकूलवर्तमानकृतिमानिति शाब्दबोधः । क्त्वाप्रत्य-  
यस्य कर्ता पूर्वकालीनत्वं चार्थः । एवमन्यत्रापि वाक्यार्थो बोध्यः ॥ इति पद-  
कृत्ये शब्दपरिच्छेदः ॥

अयथार्थानुभवस्त्रिविधः संशयविपर्ययतर्कभेदात् । एक-  
स्मिन्धर्मिणि विरुद्धनानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहि ज्ञानं सं-  
शयः । यथा स्थाणुर्वा पुरुषो वेति ॥

(न्या०) यथार्थानुभवं निरूप्यायथार्थानुभवं विभजते—सं-  
शयेत्यादिना । एकेति । एकधर्मावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपि-



तभावाभावप्रकारकज्ञानं संशय इत्यर्थः । भावद्वयकोटिकसंशयाप्रसिद्धेः स्थाणुर्वेत्यत्र स्थाणुत्वस्थाणुत्वाभावपुरुषत्वपुरुषत्वाभावकोटिक एव ॥

(प०) अयथार्थानुभवं विभजते—अयथार्थेति । संशयं लक्षयति—एकस्मिन्निति । एकस्मिन्धर्मिणि एकस्मिन्नेव पुरोवर्तिनि पदार्थे विरुद्धा व्यधिकरणा ये नानाधर्माः स्थाणुत्वपुरुषत्वादयस्तेषां वैशिष्ट्यं संबन्धः तदवगाहि ज्ञानं संशय इत्यर्थः । घटपटाविति समूहालम्बनज्ञानस्य घटत्वपटत्वरूपविरुद्धनानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहित्वादतिप्रसक्तिवारणाय एकस्मिन्निति । घटः पृथिवीति ज्ञानस्यैकस्मिन्धर्मिणि घटे घटत्वपृथिवीत्वरूपनानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहित्वादतिप्रसङ्गवारणाय विरुद्धेति । पटत्वविरुद्धघटत्ववान् पट इति ज्ञानेऽतिप्रसक्तिवारणाय नानेति ॥

मिथ्याज्ञानं विपर्ययः । यथा शुक्तौ 'रजतम्' इति ॥

(न्या०) मिथ्याज्ञानमिति । अयथार्थज्ञानमित्यर्थः । विपर्ययो नाम भ्रमः ॥

(प०) मिथ्येति । यथार्थज्ञानवारणाय मिथ्येति । अयथार्थवारणाय ज्ञानेति ।

व्याप्यारोपेण व्यापकारोपस्तर्कः । यथा यदि वह्निर्न स्यात्तर्हि धूमोऽपि न स्यादिति ॥

(न्या०) व्याप्यारोपेणेति । तर्कं व्याप्यस्य व्यापकस्य च बाधनिश्चयः कारणम् । अन्यथा बाधनिश्चयाभाव इष्टापत्तिदोषेण तर्कानुत्पत्तेः ॥

(प०) तर्कं लक्षयति—व्याप्यारोपेति । असंभववारणाय व्याप्यारोपेणेति । पुनरसंभववारणाय व्यापकारोप इति । अत्र वह्न्यभावो व्याप्यः धूमाभावो व्यापकः । यद्यपि तर्कस्य विपर्ययात्मकत्वेन पृथग्विभावोऽनुचितः । तथापि प्रमाणानुग्राहकत्वात् स उदित इति बोध्यम् । स्वप्नस्तु पुरीतद्वहिर्देशान्तर्देशयोः संबधौ इडानाब्धां वा मनसि स्थितेऽदृष्टविशेषेण धातुदोषेण वा जन्यते । स च मानसविपर्ययान्तर्भूतः ॥

स्मृतिरपि द्विविधा । यथार्था अयथार्था च । प्रमाजन्या यथार्था । अप्रमाजन्या अयथार्था ॥ सर्वेषामनुकूलवेदनीयं सुखम् ॥

(न्या०) सुखं निरूपयति—सर्वेषामिति । इतरेच्छाऽनधीनेच्छाविषयत्वमिति निष्कर्षः । यथाश्रुते अनुकूलत्वप्रकारकवेदनाविशेष्यत्वस्य घटोऽनुकूल इत्याकारकज्ञानदशायामनुकूलत्वप्रकारकज्ञानविशेष्यत्वस्य घटादावपि सत्त्वाद्धटादावतिव्याप्तिरिति निष्कृष्टलक्षणमुक्तम् । भोजनादावतिव्याप्तिवारणाय इतरे-



च्छानधीनेतीच्छाविशेषणम् । सुखेच्छायाः सुखत्वप्रकारकज्ञान-  
मात्रजन्यत्वात् ॥

(प०) सुखं निरूपयति—सर्वेषामिति । सर्वात्मनामनुकूलमिति वेद्यं यत्त-  
त्सुखमित्यर्थः । अहं सुखीत्यनुभवसिद्धसुखत्वजातिमत्, धर्ममात्रासाधारणकारणो  
गुणो वा सुखम् । शत्रुदुःखवारणाय सर्वेषामिति ॥

प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम् ॥

(न्या०) दुःखं निरूपयति—प्रतिकूलेति । अत्रापीतरद्वे-  
षानधीनद्वेषविषयत्वमिति निष्कृष्टलक्षणम् । द्वेषविषयत्वमा-  
त्रोक्तौ सर्पादावतिव्याप्तिस्तत्रापि द्वेषविषयत्वसत्त्वादतस्तत्राति-  
व्याप्तिवारणायेतरद्वेषानधीनेति द्वेषविशेषणम् । सर्पजन्यदुःखादौ  
द्वेषात्सर्पेऽपि द्वेष इति सर्पद्वेषस्य सर्पजन्यदुःखद्वेषजन्यत्वादन्य-  
द्वेषाजन्यद्वेषविषयत्वरूपदुःखलक्षणस्य सर्पादौ नातिव्याप्तिः ।  
फलेच्छा उपायेच्छां प्रति कारणम् । अतः फलेच्छावशादुपा-  
येच्छा भवति । एवं फले द्वेषादुपाये द्वेषः ॥

(प०) प्रतिकूलेति । दुःखत्वजातिमत्, अधर्ममात्रासाधारणकारणो गुणो  
वा दुःखम् । पदकृत्यं पूर्ववत् ॥

इच्छा कामः । क्रोधो द्वेषः । कृतिः प्रयत्नः ॥

(प०) इच्छां निरूपयति—इच्छेति । काम इति पर्यायः । इच्छात्वजाति-  
मती इच्छा । सा द्विविधा—फलेच्छा उपायेच्छा च । फलं सुखादिकम् । उपायो  
यागादिः । द्वेषं निरूपयति—क्रोध इति । द्वेष्टीत्यनुभवसिद्धद्वेषत्वजातिमान्  
द्विष्टसाधनताज्ञानजन्यगुणो वा द्वेषः । प्रयत्नः निरूपयति—कृतिरिति । प्रयत्न-  
त्वजातिमान्प्रयत्नः । स त्रिविधः प्रवृत्तिनिवृत्तिर्जीवनयोनिभेदात् । इच्छाजन्यो  
गुणः प्रवृत्तिः । द्वेषजन्यो गुणो निवृत्तिः । जीवनादृष्टजन्यो गुणो जीवनयोनिः ।  
स च प्राणसंचारकारणम् ॥

विहितकर्मजन्यो धर्मः । निषिद्धकर्मजन्यस्त्वधर्मः ॥

(न्या०) धर्माधर्मौ निरूपयति—विहितेति । वेदविहिते-  
त्यर्थः । निषिद्धेति । वेदनिषिद्धेत्यर्थः ॥

(प०) धर्ममाह—विहितेति । वेदविहितेत्यर्थः । अधर्मवारणाय वेदविहि-  
तेति । यागादिक्रियावारणाय कर्मजन्य इति । स च कर्मनाशाजलस्पर्शकीर्तनभो-  
गतत्त्वज्ञानादिना नश्यति । अधर्मलक्षणमाह—निषिद्धेति । वेदेनेत्यर्थः । धर्म-  
वारणाय वेदनिषिद्धेति निषिद्धक्रियावारणाय कर्मजन्य इति । स च भोगप्राय-  
श्चित्तादिना नश्यति । एतावेव अदृष्टमिति कथ्यते । वासनाजन्यौ च । वासना च  
विलक्षणसंस्कारः ॥



बुद्ध्यादयोऽष्टावात्ममात्रविशेषगुणाः । बुद्धीच्छाप्रयत्ना  
नित्या अनित्याश्च । नित्या ईश्वरस्य । अनित्या जीवस्य ॥

(न्या०) बुद्ध्यादयोऽष्टाविति । बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्र-  
यत्नधर्माधर्मा इत्यर्थः ॥

संस्कारस्त्रिविधः । वेगो भावना स्थितिस्थापकश्चेति ।  
वेगः पृथिव्यादिचतुष्टयमनोवृत्तिः । अनुभवजन्या  
स्मृतिहेतुर्भावना आत्ममात्रवृत्तिः । अन्यथाकृतस्य पुन-  
स्तदवस्थापादकः स्थितिस्थापकः कटादिपृथिवीवृत्तिः ॥  
इति गुणाः ॥

(न्या०) संस्कारं विभजते—संस्कार इति । भावनां लक्ष-  
यति—अनुभवेति । अनुभवजन्यत्वे सति स्मृतिहेतुत्वं भाव-  
नाया लक्षणम् । अत्रानुभवजन्यत्वे सतीति विशेषणानुपादाने  
आत्ममनःसंयोगेऽतिव्याप्तिरात्ममनःसंयोगस्य ज्ञानमात्रं प्रत्यस-  
मवायिकारणत्वेन स्मृतिं प्रत्यपि कारणत्वादतस्तदुपादानम् ।  
आत्ममनःसंयोगस्यानुभवजन्यत्वाभावात्तातिव्याप्तिः । तावन्मात्रे  
कृतेऽनुभवध्वंसेऽतिव्याप्तिः । ध्वंसं प्रति प्रतियोगिनः कारणत्वेना-  
नुभवध्वंसस्याप्यनुभवजन्यत्वात् । अतः स्मृतिहेतुत्वोपादानम् ।  
अनुभवध्वंसे स्मृतिहेतुत्वाभावान्तातिव्याप्तिः । नन्वत्र विशिष्ट-  
बुद्धिं प्रति विशेषणज्ञानस्य कारणता सकलतान्त्रिकमतसिद्धा ।  
यथा दण्डविशिष्टबुद्धिं प्रति दण्डज्ञानं कारणम् । दण्डविशिष्टबुद्धि-  
र्नाम दण्डप्रकारकज्ञानम् । तथाच दण्डप्रकारकबुद्धित्वावच्छिन्नं  
प्रति दण्डज्ञानत्वेन कारणत्वमित्यापतितम् । दण्डप्रकारकबुद्धि-  
र्दण्डी पुरुष इत्याकारकबुद्धिस्तत्र दण्डज्ञानं कारणम् । नहि  
दण्डमजानानः पुमान् दण्डी पुरुष इति प्रत्योति । एवं च यत्रायं  
दण्ड इति प्रत्यक्षं जातं तदनन्तरं दण्डी पुरुष इत्याकारकप्रत्य-  
क्षमुत्पन्नं तत्र दण्डी पुरुष इत्याकारकप्रत्यक्षेऽतिव्याप्तिः । तद्धि  
स्वाव्यवहितपूर्वक्षणोत्पन्नदण्डज्ञानात्मकानुभवजन्यं जनिष्यमाणे  
दण्डी पुरुष इत्याकारकस्मरणे कारणं च स्मृतिं प्रत्यनुभवस्य  
कारणत्वात् । तथा चानुभवजन्यत्वे सति स्मृतिहेतुत्वरूपभावना-  
लक्षणस्य यथोक्तदण्डी पुरुष इत्याकारकानुभवे विद्यमानत्वादति-  
व्याप्तिरिति चेत् । अत्र ब्रूमः—अनुभवजन्यत्वं अनुभवाविष्टका-  
रणतानिरूपितकार्यताश्रयत्वम् । तत्र कारणतायामनुभवत्वाव-  
च्छिन्नत्वं निवेद्यते । तथा चानुभवत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपि-



तकार्यताश्रयत्वमनुभवजन्यत्वमिति फलितम् । अतो नोक्तातिव्याप्तिः । तथाहि—दण्डप्रकारकबुद्धित्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितदण्डज्ञाननिष्ठकारणतायां न दण्डानुभवत्वमवच्छेदकं दण्डानुभवादिव दण्डस्मरणादपि दण्डप्रकारकबुद्धेरुत्पत्तेः । अतो दण्डप्रकारकबुद्धित्वावच्छिन्नं प्रत्यनुभवस्मरणसाधारणदण्डज्ञानत्वेनैव दण्डज्ञानस्य कारणतायाः स्वीकरणीयत्वेन दण्डज्ञानत्वस्यैव तदवच्छेदकत्वात् । तथाचानुभवत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताश्रयत्वस्योक्तप्रत्यक्षेऽभावान्नातिव्याप्तिः । भावनायां तु लक्षणमिदं वर्तते । तथाहि—अनुभवेनैव भावनाख्यसंस्कारोत्पत्त्या भावनात्वावच्छिन्नं प्रत्यनुभवस्यानुभवत्वेनैव कारणतया भावनात्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितानुभवनिष्ठकारणतायामनुभवत्वमवच्छेदकम् । अतोऽनुभवत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताश्रयत्वभावनायां वर्तते इति नासंभवः । नन्वेवं स्मृतिहेतुत्वविशेषणवैयर्थ्यमापद्यते । तद्व्यनुभवध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय प्रागुपात्तम् । नहि यथोक्तानुभवजन्यत्वविवक्षायामनुभवध्वंसेऽतिव्याप्तिः प्रसज्यते । तथाहि—ध्वंसत्वावच्छिन्नं प्रति प्रतियोगिनः कारणत्वं प्रतियोगित्वेन रूपेण । तत्तद्ध्वंसत्वावच्छिन्नं प्रति तत्तत्प्रतियोगिव्यक्तेस्तद्व्यक्तित्वेन च कारणत्वमित्येवं ध्वंसप्रतियोगिनोः कार्यकारणभावः । तथा च ध्वंसनिष्ठकार्यतानिरूपिता यानुभवनिष्ठा कारणता तस्यां प्रतियोगित्वमवच्छेदकं तत्तद्व्यक्तित्वं च । न त्वनुभवत्वमपीति सिद्धान्तः । एवं चानुभवत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताश्रयत्वरूपानुभवजन्यत्वविरहेणैवातिव्याप्तिवारणसंभवात्कृतं स्मृतिहेतुत्वविशेषणेनेति चेत् । न । स्मृतावतिव्याप्तिवारणायैव तद्विशेषणप्रवेशात् । तथाहि—स्मृतिं प्रत्यनुभव एव कारणं न तु स्मृतिरप्यतो घटस्मृतित्वावच्छिन्नं प्रति घटानुभवस्य घटानुभवत्वेनैव कारणत्वं न तु घटज्ञानत्वेन । इत्थंचानुभवत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताश्रयत्वस्य स्मृतौ विद्यमानत्वात्तत्रातिव्याप्तिः । उक्तविशेषणदाने तु नहि स्मृतिः स्मृतिहेतुर्भवतीति तद्व्युदासः ॥

(प०) संस्कारं विभजते—संस्कारेति । सामान्यगुणात्मविशेषगुणोभयवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान्संस्कारः । घटादिवारणाय गुणत्वव्याप्येति । संयोगादिवारणाय आत्मविशेषगुणोभयवृत्तीति । ज्ञानादिवारणाय सामान्येति । द्वितीयादिपतनासमवायिकारणं वेगः । रूपादिवारणाय द्वितीयादिपतनेति । कालादिवारणाय असमवायीति । भावनां लक्षयति—अनुभवेति । आत्मादिवारणाय प्रथमदलम् । अनुभवध्वंसवारणाय द्वितीयदलम् । स्थितिस्थापकमाह—अन्यथेति । पृथिवीमात्रसमवेतसंस्कारत्वव्याप्यजातिमत्त्वं स्थितिस्थापकत्वम् । गन्धवत्त्वमादाय



गन्धेऽतिव्याप्तिवारणाय संस्कारत्वव्याप्येति । भावनात्वमादाय भावनावारणाय पृथिवीसमवेतेति । स्थितिस्थापकरूपान्यतरत्वमादाय रूपवारणाय जातीति । इति गुणा इति । द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सति सामान्यवान् गुणः । द्रव्यकर्मणोरतिव्याप्तिवारणाय विशेषणदलम् । सामान्यादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलम् ॥

चलनात्मकं कर्म । ऊर्ध्वदेशसंयोगहेतुरुत्क्षेपणम् । अधो-  
देशसंयोगहेतुरपक्षेपणम् । शरीरस्य संनिकृष्टसंयोगहेतु-  
राकुञ्चनम् । विप्रकृष्टसंयोगहेतुः प्रसारणम् । अन्य-  
त्सर्वं गमनम् ॥

(प०) चलनेति । संयोगभिन्नत्वे सति संयोगासमवायिकारणं कर्म । ह-  
स्तपुस्तकवारणाय सत्यन्तम् । घटादिवारणाय विशेष्यदलम् । ऊर्ध्वेति । अपक्षे-  
पणवारणाय ऊर्ध्वेति । कालादिवारणाय असाधारणेत्यपि बोध्यम् । अधोदेशेति ।  
उत्क्षेपणवारणाय अधोदेशेति । कालादिवारणाय असाधारणेत्यपि देयम् । शरी-  
रेति । प्रसारणादिवारणाय शरीरसंनिकृष्टेति । कालादिवारणाय असाधारणं देयम् ।  
विप्रकृष्टेति । उत्क्षेपणादिवारणाय विप्रकृष्टेति । कालादिवारणाय असाधारणम-  
प्यावश्यकम् ॥

नित्यमेकमनेकानुगतं सामान्यम् । द्रव्यगुणकर्मवृत्तिः ।  
परं सत्ता । अपरं द्रव्यत्वादि ॥

(न्या०) सामान्यं निरूपयति—नित्यमेकमिति । नि-  
त्यत्वे सत्यनेकसमवेतत्वं सामान्यलक्षणम् । नित्यत्वविशेषणा-  
नुपादानेऽनेकसमवेतत्वस्य संयोगादौ सत्त्वात्तत्रातिव्याप्तिस्तद्वार-  
णाय नित्यत्वविशेषणम् । अनेकसमवेतत्वानुपादाने नित्यत्वमात्रो-  
पादाने आकाशादावतिव्याप्तिस्तद्वारणायानेकसमवेतत्वम् ।  
अनेकसमवेतत्वानुपादाने नित्यत्वविशिष्टसमवेतत्वमात्रोक्तावा-  
काशगतैकत्वपरिमाणादौ जलपरमाणुगतरूपादौ चातिव्याप्तिः ।  
जलपरमाणुगतरूपादेराकाशगतैकत्वपरिमाणादेर्नित्यत्वात् सम-  
वेतत्वाच्च । अतः अनेकेति समवेतविशेषणम् ॥

(प०) नित्यमिति । संयोगादिवारणाय नित्यमिति । कालादिपरिमाणवारणा-  
य अनेकेति । अनेकानुगतत्वं च समवायेन बोध्यम् । तेन नात्यन्ताभावेऽति-  
व्याप्तिः ॥

नित्यद्रव्यवृत्तयो व्यावर्तका विशेषाः ॥

(प०) नित्यद्रव्यवृत्तय इति । घटत्वादिवारणाय नित्यद्रव्यवृत्तय इति ।  
आत्मत्वमनस्त्ववारणाय आत्मत्वमनस्त्वभिन्ना इत्यपि बोध्यम् ॥



नित्यसंबन्धः समवायः । अयुतसिद्धवृत्तिः । ययोर्द्वयो-  
र्मध्य एकमविनश्यदवस्थमपराश्रितमेवावतिष्ठते तावयुत-  
सिद्धौ । यथा अवयवावयविनौ गुणगुणिनौ क्रिया-  
क्रियावन्तौ जातिव्यक्ती विशेषनित्यद्रव्ये चेति ॥

(न्या०) समवायं निरूपयति—नित्येति । संबन्धत्वं  
विशिष्टप्रतीतिनियामकत्वम् । तावन्मात्रोक्तौ संयोगेऽतिव्याप्ति-  
रतो नित्य इति विशेषणम् । ( ययोर्द्वयोर्मध्य इति । यन्नि-  
ष्ठकालनिरूपिताधेयतासामान्यं यदवच्छिन्नं तदुभयान्यतरत्वम-  
युतसिद्धत्वमित्यर्थः ॥ )

(प०) नित्येति । आकाशादिवारणाय संबन्ध इति । संयोगवारणाय  
नित्येति । स्वरूपसंबन्धवारणाय तद्विन्न इत्यपि बोध्यम् ॥

अनादिः सान्तः प्रागभावः । उत्पत्तेः पूर्वं कार्यस्य ॥

(ब०) प्रागभावं लक्षयति—अनादिरिति । घटादिवारणाय प्रथमदलम् ।  
परमाणुवारणाय द्वितीयदलम् । पुनः प्रागभावः कस्मिन्कालेऽस्तीत्यत आह—  
उत्पत्तेरिति । कार्यस्योत्पत्तेः प्राक् स्वप्रतियोगिसमवायिकारणे वर्तते इत्यर्थः ॥

सादिरनन्तः प्रध्वंसः । उत्पत्त्यनन्तरं कार्यस्य ॥

(प०) ध्वंसं लक्षयति—सादिरिति । घटादिवारणाय अनन्त इति । आ-  
त्मादिवारणाय सादिरिति । उत्पत्तीति । कार्यस्योत्पत्त्यनन्तरं स्वप्रतियोगि-  
समवायिकारणवृत्तिरित्यर्थः ॥ स च 'ध्वस्तः' इति प्रत्ययविषयः ॥

त्रैकालिकसंसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽत्यन्ताभावः ।

यथा भूतले घटो नास्तीति ॥

(न्या०) अत्यन्ताभावं निरूपयति—त्रैकालिकेति ।  
( प्रागभावाप्रतियोगित्वे सति ध्वंसाप्रतियोगित्वे सत्यन्योन्याभा-  
वभिन्नत्वे सत्यभावत्वमत्यन्ताभावस्य लक्षणम् । ध्वंसप्रागभावान्यो  
न्याभावाकाशादीनां वारणाय यथाक्रमं विशेषणोपादानम् । वस्तु-  
तस्तु संसर्गाभावत्वं तादात्म्यभिन्नसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिता-  
काभावत्वम् । ध्वंसप्रागभावयोश्च न संसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताक-  
त्वमिति तेनैव तद्वारणे त्रैकालिकेति स्वरूपाख्यानमेवेति बोध्यम् ॥ )

(प०) अत्यन्ताभावं लक्षयति—त्रैकालिकेति । त्रैकालिकत्वे सति संस-  
र्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽत्यन्ताभावः । ध्वंसप्रागभाववारणाय त्रैकालिकेति । भे-  
दवारणाय संसर्गेत्यादि ॥

तादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽन्योन्या-  
भावः । यथा घटः पटो नेति ॥



(न्या०) अन्योन्याभावं निरूपयति—तादात्म्येति ॥

(प०) अन्योन्याभावं लक्षयति—तादात्म्येति । प्रागभावप्रध्वंसाभाववारणाय तादात्म्येति । अत्यन्ताभाववारणाय तादात्म्यत्वेन संबन्धो विशेषणीयः ॥

सर्वेषां पदार्थानां यथायथमुक्तेष्वन्तर्भावात्सप्तैव पदार्था इति सिद्धम् ।

कणादन्यायमतयोर्बालव्युत्पत्तिसिद्धये ।

अन्नंभट्टेन विदुषा रचितस्तर्कसंग्रहः ॥

इति अन्नंभट्टविरचितस्तर्कसंग्रहः समाप्तः ॥

(न्या०) सर्वेषामिति । ‘प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्त-  
सिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजाति-  
निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः’ इति न्यायस्यादिमसूत्र  
उक्तानां प्रमाणप्रमेयादीनामित्यर्थः । विस्तरस्त्वन्यत्रानुसंधेयः ।

इति श्रीगोवर्धनविरचिता तर्कसंग्रहस्य न्यायबो-  
धिनीध्याख्या समाप्ता ॥

(प०) पदार्थज्ञानस्य परमप्रयोजनं मोक्ष इत्यामनन्ति । स च आत्यन्तिकैक-  
विंशतिदुःखध्वंसः । आत्यन्तिकत्वं च स्वसमानाधिकरणदुःखप्रागभावासमानका-  
लीनत्वम् । दुःखध्वंसस्येदानीमपि सत्त्वेनास्मदादीनामपि मुक्तत्वापत्तिवारणाय  
कालीनान्तम् । मुक्त्यात्मकदुःखध्वंसस्यान्यदीयदुःखप्रागभावसमानकालीनत्वाद्वाम-  
देवादीनां मुक्तात्मनामप्यमुक्तत्वप्रसंगात्स्वसमानाधिकरणेति प्रागभावविशेषणम् ।  
दुःखानि चैकविंशतिः—शरीरं षडिन्द्रियाणि षड्विषयाः षड्बुद्ध्यः सुखं दुःखं  
चेति दुःखानुषङ्गित्वाच्छरीरादौ गौणदुःखत्वम् । तथाच ‘आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो  
मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः’ इति श्रुतेरात्मज्ञानसाधननिदिध्यासनमननसाधनत्वं पदा-  
र्थज्ञाने संजायतीति । एवं च सति तत्त्वज्ञाने शरीरपुत्रादावात्मत्वस्वीयत्वाभिमानरू-  
पमिथ्याज्ञानस्य नाशः । तेन दोषाभावः । तेन प्रवृत्त्यनुत्पत्तिः । ततस्तत्कालीनश-  
रीरेण कायव्यूहेन वा भोगतत्त्वज्ञानाभ्यां प्रारब्धकर्मणां नाशः । ततो जन्माभावः ।  
‘नित्यनैमित्तिकैरेव कुर्वाणो दुरितक्षयम् । ज्ञानं च विमलीकुर्वन्नभ्यासेन च  
पाचयेत् ॥ अभ्यासात्पक्वविज्ञानः कैवल्यं लभते नरः ।’ इत्यादिवचनात् ‘तमेव वि-  
दित्वातिमृत्युमेति’ इति श्रुतेश्च सगुणोपासनाकाशीमरणादेरपि तत्त्वज्ञानद्वारा  
मुक्तिहेतुत्वम् । अत एव परमेश्वरः काश्यां तारकमुपदिशतीति सारम् ॥

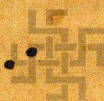
चक्रे चन्द्रजसिंहो हि पदकृत्यमिदं शुभम् ।

परोपकारकरणं माधवो वीक्षतामिदम् ॥

इति श्रीमत्तत्रभवद्गुरुदत्तसिंहशिष्यश्रीचन्द्रजसिंहविरचितं  
पदकृत्यं समाप्तम् ॥



1200



Indira Gandhi National  
Centre for the Arts